MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 3

वर्ष 6, अंक 3, सितंबर-2020
भाद्रपद प्र., वि. सं. 2077,₹ 50

मंगल विमर्श

त्रैमासिक

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

अंदर के पृष्ठों पर

6-21

कोरोना के संदर्भ में भारतीय जीवन शैली की प्रासंगिकता

डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

22-29

रामचरित मानस में प्रवासी चिंतन

डॉ. नृत्य गोपाल

38-45

वैचारिक क्रांति के अग्रदूत कृष्ण

डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

46-57

भारतीय संस्कृति और बहुभाषिकता की समझ

डॉ. अरुणाभ सौरभ

30-37

वर्णमाला का अर्थ

डॉ. शीला टावरी

58-62

देवी स्वरूपा नारी

डॉ. अर्चना लखोटिया

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संपादक
सुनील पांडेय

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

स्वामी- मंगल सृष्टि, सी-84, अहिंसा विहार, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-110085 के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक आदर्श गुप्ता, बी-170, प्रियदर्शनी विहार, दिल्ली-110092 द्वारा प्रकाशित एवं अंकित प्रिंटिंग प्रेस, 9326, शाही मोहल्ला, रोहताश नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032, द्वारा मुद्रित।
संपादक : सुनील पांडेय

RNI
DELHIN/2015/59919
ISSN
2394-9929

फोन नं.
+91-9811166215
+91-11-42633153
ई-मेल
mangalvimarsh@gmail.com
वेब साइट
www.mangalvimarsh.in

मंगल विमर्श पत्रिका में व्यक्त विचारों के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं। संपादक, मुद्रक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

सभी विवादों का न्याय क्षेत्र केवल दिल्ली होगा।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 4

अथ

यह वर्ष अभूतपूर्व है। अघटितताओं से आच्छादित—अधिकांशतः विषम व विकराल, पर एकाध सुखद व शुभ भी। साल की शुरुआत ही आस्ट्रेलिया के जंगलों में लगी अविश्वसनीय, विकट व विकराल आग से हुई। यों दावाग्नि वहाँ हर वर्ष लगती है, लेकिन ऐसी विस्फोटक व विनाशकारी आग पहले कभी न लगी थी। इतनी भयावह कि वहाँ से एक हजार कि.मी. दूर स्थित न्यूजीलैंड में भी उसका धुआँ विषाक्तता फैल रहा था। कोई ढाई करोड़ एकड़ जमीं पर फैले जंगलों की सकल वनस्पतियों को राख कर यह प्रचंड आग करीब दो अरब जीव-जंतुओं व पक्षियों को निगल गई। इनमें कई दुर्लभ प्रजातियाँ भी थीं। अग्नि शमन हेतु पानी बचाने के लिए हजारों की संख्या में ऊँटों को गोली मारने जैसी नृशंसता भी हुई। पर्यावरण को पहुँची क्षति का आँकना तो संभव नहीं।

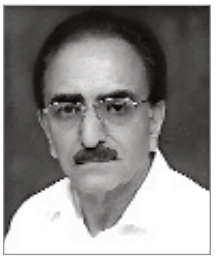

ओमीश परुथी
एसोसिएट प्रोफेसर (से.नि.)
प्रधान संपादक

इस महाविध्वंस के बाद कोविड-19 के कहर से मानवता कराह उठी। इस अनदेखी, अनसुनी महामारी से फैला संत्रास, संशय, अलगाव व अविश्वास अकथनीय है। धरा के लिए इतना बड़ा अभिशाप कि आज भी उसके साये सिमट नहीं रहे, नित्य प्रति बढ़ते ही जा रहे हैं।

इन विभीषिकाओं के बीच एक स्वर आस्था व श्रद्धा का भी निनादित हुआ। कोटि-कोटि जन की हृदयाकांक्षाओं व आशाओं को झुठलाता जो अब तक अघटित था, शताब्दियों के कठिन संघर्ष एवं बलिदानों के बावजूद, भितरघातियों की प्रवंचनाओं के चलते जो चिर प्रतीक्षित था, वह अपूर्व पल, रामजन्मभूमि-पुनरुत्थान का वह विलक्षण क्षण; इसी वर्ष पाँच अगस्त को उद्घाटित हुआ।

इस शुभ दिन हिंदू जनमानस विजयोल्लास से गर्वित था। सैंकड़ों सालों से उदासी व हताशा में डूबी अयोध्या नगरी खिल उठी। पूरा देश राममय था। संत समाज हर्षित था। राम भक्त आह्लादित थे। संघर्ष में जो शहीद हो गये थे उनकी आत्माओं को शांति मिली। अधर्म, अनीति, अनाचार को पछाड़ कर धर्म ध्वजा एक बार फिर सगर्व फहराने लगी। त्राहिमाम की अराजकता के बीच आश्वस्ति का शंखनाद होने लगा। विराट् संत समाज के सन्निध्य में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने मंदिर का भव्य शिलान्यास किया। महामारी के चलते जन सामान्य तो अयोध्या के समारोह में सम्मिलित नहीं हो सके, किंतु उनकी प्रसन्नता का सैलाब चारों ओर व्याप्त था।

केवल हिंदू समाज ही नहीं, सकारात्मक व संतुलित सोच का हर भारतवासी खुश था। सच्चे मुसलमान भी संतुष्ट थे। सदियों का द्वेष व द्वंद्व शमित हुआ था। सही दिशा में सोचने वाले मुसलमान भी अपने पूर्वजों द्वारा किए गए अनर्थ

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 5

और अन्याय के कारण विस्थापित राम लला हेतु मंदिर निर्माण की शुभ शुरुआत से प्रसन्न थे।

हताश व हतप्रभ तो केवल वे नेता थे, जो राजनीति को मात्र धंधा मानते हैं। सांप्रदायिकता के पुतलों की बात तो फिर भी समझ आती है, लेकिन कुछ नेताओं ने मंदिर निर्माण की राह को रोकने के लिए जो ओछे काम किए, उन्हें आने वाले युगों में भी भर्त्सना ही मिलेगी। अपने विराट् सांस्कृतिक प्रतीक पुरुष को नकार कर उन्होंने वोट बैंक को प्राथमिकता दी, ऐसे दोगले, सत्तालोलुप व स्वार्थी नेता शायद ही इस धरा पर कहीं और हों। अपनी वरेण्य विरासत को नकारने वालों को भारतीय जनमानस कभी माफ नहीं करेगा।

अंतत: सत्य ही विजयी हुआ।

ईश्वर करेगा हमें कोविड महामारी से भी जल्द ही राहत मिलेगी।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 6

जीवन शैली के संबंध में एक भारतीय दृष्टि रही है, भारतीय परंपरा रही है, वह अधिक शाश्वत एवं अधिक स्थायी है। वह कभी किसी विशेष काल तक सीमित नहीं रहती है। परंतु इसे हम अपना दुर्भाग्य ही कहेंगे कि हम लोग भी भारतीय जीवन शैली को भूल गए हैं। जीवन शैली का किसी भी समाज में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। कारण क्या है? जीवन शैली किसी भी देश के, समाज के विकास का कारण भी है, परिणाम भी। जीवन शैली किसी समाज जीवन के अंग-प्रत्यंग के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। आज के संदर्भ में विचार करेंगे तो वर्तमान विकास और व्यवस्था के संकट के मूल में दोषपूर्ण जीवन शैली ही है। इस दोषपूर्ण जीवन शैली को नहीं बदला तो जिस संकट की हम चिंता कर रहे हैं, वह संकट लंबे समय तक नहीं टल सकता, भले ही थोड़े बहुत समय के लिए इसकी गति मंद पड है, अतः इस दोषपूर्ण जीवन शैली को बदल कर हमें भारतीय दृष्टि की दोषमुक्त जीवन शैली के बारे में विचार करना पड़ेगा। आज आवश्यकता है कि हम उपभोगवाद से दूर रहें तथा संयम व सीमाकरण के सिद्धांतों का पालन करें।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 7

डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

कोरोना के संदर्भ में भारतीय जीवन शैली की प्रासंगिकता

जब कभी भी कोरोना महामारी जैसा संकट आता है, तो ऐसा संकटकाल जहाँ कठिनाईयाँ और समस्याएँ लेकर आता है; वहीं वह पुनर्चिंतन व पुनर्मूल्यांकन का भी अवसर देता है। मुझे ऐसा लगता है कि हम जिस अंधी दौड़ में दौड़े चले जा रहे थे, कहीं रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे, इस संकट ने मूलभूत विषयों पर चिंतन करने का अपने को अवसर प्रदान किया है, जिसमें से जीवन शैली का महत्त्व भी एक महत्त्वपूर्ण विषय है।

जीवन शैली के संबंध में एक भारतीय दृष्टि रही है, भारतीय परंपरा रही है, वह अधिक शाश्वत एवं अधिक स्थायी है। वह कभी किसी विशेष काल तक सीमित नहीं रहती है। परंतु इसे हम अपना दुर्भाग्य ही कहेंगे कि हम लोग भी भारतीय जीवन शैली को भूल गए हैं। भारतीय जीवन शैली के आचरण को जब भारत ही भूल गया तो दुनिया के देशों में तो उसको सम्मान मिलने का कोई कारण ही नहीं, तो मुझे ऐसा लगा कि आज के इस कोरोना संकट के काल में जीवन शैली पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

जीवन शैली का अर्थ

जीवन शैली एक बहुआयामी संकल्पना (Multi dimensional concept) है। जब हम किसी भी देश व समाज की जीवन शैली का विचार करेंगे तो बहुत सारे पहलू उसमें समाविष्ट होते हैं — खानपान, रहन-सहन, काम-धाम, चाल-चलन एवं आचार-

विचार ऐसी अनेक बातों का संकलित नाम जीवन शैली है। सरल शब्दों में कहना हो तो जीवन शैली का अर्थ है, जीवन जीने का ढंग। विषय समझने-समझाने की दृष्टि से जीवन शैली के तीन मुख्य आयामों की चर्चा करता हूँ।

जीवन शैली का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है उपभोग शैली (Consumption pattern) कैसी है अपनी। दूसरा महत्त्वपूर्ण आयाम है, आचार और व्यवहार शैली अर्थात् हमारा ईथिकल पैटर्न (Ethical pattern) और बिहेवियरल पैटर्न (Behaviour pattern) क्या है? और तीसरा आयाम, जो महत्त्वपूर्ण आयाम है, वह है कार्य शैली (Working pattern)। ऐसी तीनों प्रकार की शैलियों को मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि इससे अपनी जीवन शैली का निर्माण होता है।

जीवन शैली का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है उपभोग शैली कैसी है अपनी। दूसरा महत्त्वपूर्ण आयाम है, आचार और व्यवहार शैली अर्थात् हमारा ईथिकल पैटर्न और बिहेवियरल पैटर्न क्या है? और तीसरा आयाम, जो महत्त्वपूर्ण आयाम है, वह है कार्य शैली। ऐसी तीनों प्रकार की शैलियों को मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि इससे अपनी जीवन शैली का निर्माण होता है।

जीवन शैली का किसी भी समाज में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। कारण क्या है? जीवन शैली किसी भी देश के, समाज के विकास का कारण भी है, परिणाम भी। दोनों बातें हैं। कोई भी देश विकास क्यों करता है? और कैसे करता है? उसके महत्त्वपूर्ण कारणों में जीवन शैली आती है। आखिर विकास क्यों करना चाहते हैं? उदेद्श्य क्या है? तो विशिष्ट प्रकार की जीवन शैली से जीवन जीना चाहते हैं। इसलिए जीवन शैली समाज के विकास का कारण और परिणाम दोनों हैं और दोनों का निर्धारण करती है। इसके आयाम (Dimension) क्या हैं? विकास किस दिशा में चलेगा और कुल मिलाकर के उस दिशा में विकास अगर आगे बढ़ गया है तो देश और समाज की अवस्था क्या रहेगी? दशा क्या रहेगी? इसलिए जीवन शैली का महत्त्व है और अधिक गहराई से विचार करने से ध्यान आता है कि जीवन शैली किसी समाज की सभ्यता, संस्कृति, जीवन मूल्य, सामाजिक सांस्कृतिक संस्थाओं, व्यवस्थाओं, परंपराओं, आर्थिक गतिविधियों, उत्पादन शैली, तकनीक एवं तकनोलॉजी के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। अर्थात् जीवन शैली किसी समाज जीवन के अंग-प्रत्यंग के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इस दृष्टि से जीवन शैली पर विचार किया जाना चाहिए।

जीवन शैली की समस्याएँ एवं विसंगतियाँ

आज के संदर्भ में विचार करेंगे तो वर्तमान विकास और व्यवस्था के संकट के मूल में दोषपूर्ण जीवन शैली ही है। इस दोषपूर्ण जीवन शैली को नहीं बदला तो जिस संकट की हम चिंता कर रहे हैं, वह संकट लंबे समय तक नहीं टल सकता, भले ही थोड़े बहुत समय के लिए इसकी गति मंद पड़ सकती है, अत: इस दोषपूर्ण जीवन शैली को बदल कर हमें भारतीय दृष्टि की दोषमुक्त जीवन शैली के बारे में विचार करना पड़ेगा। जब इस वर्तमान जीवन शैली को दोषपूर्ण जीवन शैली करते हैं, तो इसका निहितार्थ है कि इसमें पश्चिम के प्रभाव आ गए हैं। दुर्भाग्य से पश्चिम के तथाकथित संपन्न देशों ने जैसा जीवन स्तर (स्टैंडर्ड ऑफ लिविंग) प्राप्त कर लिया है, हमको लगा कि वही आदर्श है, वही प्राप्त करने योग्य है तो हमने आँख

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 9

बंद करके, बगैर लाभ-हानि का विचार किये और अंधी नकल करके इस पश्चिम की दोषपूर्ण जीवन शैली को आधुनिकता के नाम पर स्वीकार कर लिया। आजकल बड़ा शब्द चलता है, विशेषकर से पढ़े-लिखे लोगों में कि ये पुराने जमाने के ख्याल छोड़ देना चाहिए, यह तो मॉडर्न जमाना है, आज तो साइंस का जमाना है, साइंटिफिक चीजों के संबंध में विचार होना चाहिए। इस प्रकार आधुनिकता के नाम पर हमने दोषपूर्ण जीवन शैली को स्वीकार कर लिया और यह तमाम तरह के संकटों का कारण बना। वर्तमान पश्चिमी जीवन शैली दोषपूर्ण कैसे है और इसने जीवन में क्या समस्याएँ खड़ी की और इसकी क्या विसंगतियाँ हैं, उनके बारे में थोड़ा विचार करेंगे।

विश्वभर में लगभग 20 फीसदी आबादी और भारत में करीब 30-32 फीसदी आबादी जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित है। उनके जीवन के लिए जो न्यूनतम चीजें चाहिएँ, वो भी नहीं मिल पा रही हैं और इसके विपरीत दुनिया में व अपने देश में भी कुछ चंद लोग, विलासी जीवन जी रहे हैं। अनावश्यक चीजों का उपभोग कर रहे हैं और गरीब व्यक्ति भूख से तड़पते हुए, मरते चले जा रहे हैं।

बढ़ता उपभोक्तावाद –बढ़ती विषमता

यह बात सच है कि लगभग पिछले 150-200 सालों में विश्वभर में उपभोग की मात्रा और विविधता दोनों बढ़ी हैं। उपभोग की मात्रा भी बढ़ गई है और विविधता तो इतनी हो गई जितनी कि आज से 50 साल पहले हम कल्पना ही नहीं कर सकते थे। हर रोज नई-नई चीजें उपभोग के लिए आ रही हैं और हर एक व्यक्ति उसकी आवश्यकता है या नहीं है, तो भी नई-नई चीजों से आकृष्ट होकर वह उन्हें अपनी उपभोग की टोकरी में इन तमाम चीजों को शामिल करता जा रहा है। इसका परिणाम क्या हो रहा है, परिणामस्वरूप देश में और दुनिया में भयंकर विषमता आ गई है। अमानवीय असमानता आ गई है। क्योंकि जिस उपभोग पद्धति (Consumption pattern) की, जिस जीवन पद्धति (Life Pattern) की बात आजकल का व्यक्ति करता है, वह दुनिया के तमाम देशों को प्राप्त कर सकना तो संभव ही नहीं है। परंतु होड़ चली है। एक झुनझुना थमा दिया गया है, एक गलत दिशा दे दी गई है। सबको सब कुछ प्राप्त हो नहीं सकता। इसलिए सबको प्राप्त ना हो सकने के कारण से जिनके पास साधन थे, जिनके पास संसाधन थे, जो ज्यादा ताकतवर थे, उन्होंने अपने आर्थिक दृष्टि से उपभोग के लिए दुनिया के संपूर्ण संसाधनों को बटोर लिया और शेष के पास कुछ भी नहीं बचा।

एक अनुमान ऐसा है कि विश्वभर में लगभग 20 फीसदी आबादी और भारत में करीब 30-32 फीसदी आबादी जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित है। उनके जीवन के लिए जो न्यूनतम चीजें चाहिएँ, वो भी नहीं मिल पा रहीं हैं और इसके विपरीत दुनिया में व अपने देश में भी कुछ चंद लोग, जिन्हें अमीर लोग कहें, संपन्न कहें, अधिक पैसे वाले कहें, अधिक धन वाले कहें, वे विलासी जीवन जी रहे हैं। अनावश्यक चीजों का उपभोग कर रहे हैं और गरीब व्यक्ति भूख से तड़पते हुए, मरते चले जा रहे हैं। अभी हम लोग देख रहे हैं ना, प्रवासी मजदूर अपने-अपने स्थानों से निकलकर अपने घर की ओर जा रहे हैं। भूख के मारे बिलख रहे हैं। साधन नहीं हैं पास में, नौकरी छूट गई है, काम-धंधा नहीं है, अपना पेट भरने लायक, अपने बच्चों का पेट पालने लायक भी साधन नहीं हैं।

इसलिए चिंता यहाँ रहने वाले लोगों को भी सता रही है और अपने से दूर रहने वाले परिवार के लोगों को भी है। कैसे जीवन चलेगा? एक बड़ी मात्रा में, बड़ी संख्या में भूख से तड़पते हुए गरीब लोग हैं।

प्रदर्शनकारी उपभोग

एक अनुमान ऐसा है कि विश्व के कुल उपभोग (Consumption expenditure) में अमीर देशों के 20 प्रतिशत लोगों का हिस्सा 86 प्रतिशत। जबकि गरीब देशों के 80 फीसदी लोगों को 14 प्रतिशत में ही गुजारा करना पड़ता है। इस प्रकार समूची दुनिया में इस वर्तमान जीवन शैली के कारण से भयंकर असमानता खड़ी हो गई है। हम देखते हैं कि बाजार में खरीदने और खर्च करने की होड़ लगी हुई है। बाजार में निकलेंगे तो लोग खरीदने के लिए दौड़े जा रहे हैं। मॉल में जा रहे हैं। दुकानों पर जा रहे हैं। स्टोर पर जा रहे हैं। अधिकाधिक चीजों को खरीदने की होड़ लगी हुई है। कोई उनसे पूछे आपको इन वस्तुओं की आवश्यकता है क्या? आवश्यकता तो नहीं है। किंतु नए फैशन की, नई डिजाइन की चीजें आ गई, इसीलिए खरीदते हैं। तो जिनके पास साधन हैं, वे तो ऐसी चीजों को खरीद लेंगे; किंतु जिनके पास साधन नहीं है, वे खरीद नहीं पाते। उपभोग के अंतर्गत दिखावे का दौर चल पड़ा है। प्रदर्शनकारी उपभोग हो गया। मैं अपने जानने वाले लोगों को दिखा सकूँ। मैं कितनी महँगी चीजों का उपभोग कर रहा हूँ। मेरे घर में सोफा कैसा है, मेरे घर में कालीन कैसा है, कप-प्लेट कैसे हैं और हमारे घर में बर्तन कैसे हैं, कपड़े कैसे हैं, बाकी समान कैसा है। ऐसे लोगों का दिखाकर रौब जमाने के लिए बहुत सारी चीजों का उपभोग करने का मामला बढ़ता जा रहा है और कई बार यह भी होता है कि व्यक्ति के पास में उन सब चीजों को खरीदने की क्षमता नही होती, पर होड़ लग गई। दूसरों की देखा-देखी खरीदने का भाव चल पड़ा और इसी में प्रतिष्ठा मानी जाने लगी। तो अगर उसके पास साधन नहीं हैं, तो भी महँगी चीजों को खरीदने के लिए ऋण ले रहे हैं, कर्ज ले रहे हैं। बैंक लोन ले रहे हैं। मिलने-जुलने वालों से उधार माँगते हैं।

उपभोग के अंतर्गत दिखावे का दौर चल पड़ा है। प्रदर्शनकारी उपभोग हो गया। मैं अपने जानने वाले लोगों को दिखा सकूँ। मैं कितनी महँगी चीजों का उपभोग कर रहा हूँ। दूसरों की देखा-देखी खरीदने का भाव चल पड़ा और इसी में प्रतिष्ठा मानी जाने लगी। तो अगर उसके पास साधन नहीं हैं, तो भी महँगी चीजों को खरीदने के लिए ऋण ले रहे हैं, कर्ज ले रहे हैं, बैंक लोन ले रहे हैं, मिलने-जुलने वालों से उधार माँगते हैं।

ऋण जाल में फँसी दुनिया

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गरीब देशों के लोग संपन्न देशों से कर्ज ले रहे हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों (MNC) से कर्ज ले रहे है। विश्व बैंक से कर्ज ले रहे हैं, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) से कर्ज ले रहे हैं। ऐसे कुल मिला कर गरीब लोग और विशेषकर गरीब देश एक गलत ऋण जाल में फँस गए हैं। इस होड़ के कारण से कर्ज जाल में फँस गए हैं। इस प्रकार से मर्यादाहीन उपभोग की होड़ मच गई है। उसके कारण से संकट खड़ा हो गया है और इतना ही नहीं, वर्तमान उपभोग का जो पैटर्न है वो मर्यादाहीन है, निरंकुश है और दरिद्रों को रौंदने वाला है। इसमें अपना बड़प्पन मानता है। शान समझता है। अपने आपको बड़ा दिखाने का उसका व्यवहार

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 11

होता है। इस उपभोग के पेटर्न पर हम आगे बढ़ चले हैं। इसके कारण से अपने देश में भी बचत में कमी होने लगी है और बचत कम हो जाएगी तो निवेश (Investment) कहाँ से होगा। पूँजी निर्माण (Capital formation) कहाँ से होगा। बचत एवं पूँजी निर्माण (Capital formation) नहीं हुआ, तो आगे आने वाले समय में अपने देश के विकास की गति कैसे बढ़ेगी? तो इस प्रकार का संकट इस दोषपूर्ण जीवन शैली ने निर्माण किया है।

विकृत जीवन शैली ने पर्यावरण को नुकसान पहुँचाया। आजकल जितनी भी विलासिता की चीजें हैं, जिनका फैशन के लिए उपयोग करते हैं, ऐसी विलासिता की बहुत सारी चीजें बनाने में बहुत सारे जीव-जंतुओं की हड्डियों, मज्जा, वसा, खून का प्रयोग होता है और उससे हम अपने फैशन के बहुत सारी चीजों का उत्पादन कर रहे हैं। देश और दुनिया में अनेक प्रजातियाँ इस फैशन के कारण नष्ट हो रही हैं और हमने वृक्षों को काट दिया है, हमने प्रदूषण फैला दिया है, अपनी शान और शौकत के नाम पर।

पर्यावरण संकट

एक दूसरा संकट जो इस जीवन शैली ने निर्माण किया वह तो हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं, इसने पर्यावरण को नुकसान पहुँचाया। प्रदूषण को बढ़ाया है। आजकल जितनी भी विलासिता की चीजें हैं, जिनका फैशन के लिए उपयोग करते हैं, ऐसी विलासिता की बहुत सारी चीजें बनाने में बहुत सारे जीव-जंतुओं की हड्डियों, मज्जा, वसा, खून का प्रयोग होता है और उससे हम अपने फैशन के बहुत सारी चीजों का उत्पादन कर रहे हैं। देश और दुनिया में अनेक प्रजातियाँ इस फैशन के कारण नष्ट हो रही हैं और हमने वृक्षों को काट दिया है, हमने प्रदूषण फैला दिया है, अपनी शान और शौकत के नाम पर। पर्यावरण का भयंकर संकट पैदा हो गया है।

विष्णु पुराण में प्रलय आने का उल्लेख है। प्रलय का कारण क्या बना? राक्षसों और आसुरी शक्तियों ने प्रकृति के साथ बेहरहमी से शोषण करना प्रारंभ कर दिया। धरती की हजम करने की क्षमता (Shinking capacity) खत्म हो गई। प्रदूषण की चीजों को अपने यहाँ समा सकने की क्षमता धरती माता की समाप्त हो गई। तब धरती माता देवी-देवताओं को साथ लेकर ब्रह्मा और विष्णु के पास पहुँची। यह क्या हो रहा है? इससे तो उद्धार होना चाहिए। तब विष्णु ने अवतार लेकर प्रकृति विरोधी आसुरी शक्तियों को नष्ट किया। तो ऐसा लगता है कि वर्तमान जीवन शैली के कारण से जो पर्यावरण का नाश हो रहा है, प्रदूषण का फैलाव हो रहा है, इस पर भी पुनर्विचार करने की आवश्यकता अपने को रहेगी।

विज्ञापनों का दुष्प्रभाव

एक तीसरी विसंगति है—बहुत सारी चीजों को खरीदा और बेचा जा रहा है। इसका एक माध्यम बन रहा है विज्ञापन। हम कोई चीज क्यों खरीदते हैं। हमारी जरूरत है, इसलिए नहीं ! उपयोगी है, वो जरूरत की है या नहीं। इस भाव को पैदा कौन करता है? विज्ञापन पैदा करता है! जैसे पिछले दिनों एक विज्ञापन आप सभी ने देखा होगा। एक बच्चा खाने की टेबल पर बैठना चाहता है। माँ कहती है हाथ धोया? आजकल हाथ धोने का रिवाज कोरोना संकट होने के कारण और अधिक चल पड़ा है। बच्चा बोलता है जी माँ नहीं धोकर आया.. फिर माँ बोलती है तेरे हाथों में कीटाणु हैं... जा हाथ धोकर आओ। फिर वो बेचारा हाथ धोकर आया... पूछा हाथ धोकर आया.... जी माँ हाथ धो आया.. किससे हाथ

धोया..? पानी से? अरे देख कितने कीटाणु हैं । साबुन से हाथ धोकर आ.... वो बेचारा फिर से हाथ धोने गया... फिर माँ ने पूछा कि धो आया...कौन से साबुन से? उसने जिस साबुन से हाथ धोया था, उस साबुन का नाम बताया। नहीं-नहीं तुम लाइफबॉय लिक्विड साबुन से हाथ धोकर आओ, वो बेचारा बच्चा लाइफबॉय लिक्विड सोप से हाथ धोकर आया। फिर माँ ने खाना खिलाने के लिए बैठाया। इससे लोगों के मन में भाव घर कर गया कि कीटाणुरहित होना है तो रोज लाइफबॉय लिक्विड सोप से हाथ धोना चाहिए और फिर अधिकांश लोगों ने लाइफबॉय से हाथ धोना शुरू कर दिया और उसकी बिक्री बढ़ गयी।

विज्ञापन अनावश्यक चीजों की इच्छाओं की आवश्यकता को उत्पन्न करता है। विज्ञापन भ्रामक है। पर हम सब ऐसे भ्रामक विज्ञापनों के वशीभूत होकर बहुत सारी चीजों को खरीदते चले जा रहे हैं। अगर हम विज्ञापनों का विश्लेषण करेंगे तो पाते हैं कि ये पति-पत्नी के माँ-बाप और बच्चों के रिश्ते में दरार डाल रहे हैं। समाज जीवन में अनेक लोगों के बीच में दूरी पैदा कर रहे हैं। इस प्रकार से वस्तुएँ बेच रहे हैं तो वस्तुएँ बेचने का यह बहुत ही अनैतिक तरीका शुरू हुआ है ।

एक दूसरे विज्ञापन का उदहारण है—हम लोगों ने देखा होगा। पिछले दिनों वो विज्ञापन काफी प्रचारित हुआ। एक माँ एक बहुत सुंदर-सलौने बच्चे को पाउडर से मालिश कर रही है। बच्चा छोटा है, बोल नहीं पाता है किंतु संकेत समझता है। माँ बच्चे को पाउडर की मालिश करते-करते कहती है— तेरे पापा ऐरा-गेरा पाउडर खरीदना चाहते थे। तेरे पापा बुद्धू हैं ना ! तो बच्चा हाँ में गर्दन हिला देता है और फिर कहती है मैंने तेरे पापा की बात नहीं मानी। मैं तो अपने लाडले के लिए लेकर आई हूँ 'जॉनसन एंड जॉनसन'। ऐसा दिखाया जाता है और फिर हमने जॉनसन एंड जॉनसन खरीदना शुरू कर दिया और एक विष डाल दिया समाज जीवन में। किसी बच्चे के माता-पिता अगर किसी खास तरह का (Particular) सामान उसके लिए नहीं खरीद पाते, तो वह उनको बुद्धु कह सकता है। संस्कारों को ऐसे विज्ञापनों ने नष्ट कर दिया है।

विज्ञापन अनावश्यक चीजों की इच्छाओं की आवश्यकता को उत्पन्न करता है। विज्ञापन भ्रामक (Misleading advertisment) है। पर हम सब ऐसे भ्रामक विज्ञापनों (Misleading advertisment) के वशीभूत होकर बहुत सारी चीजों को खरीदते चले जा रहे हैं, तो यह अनैतिक है। अगर हम विज्ञापनों का विश्लेषण करेंगे तो पाते हैं कि ये पति-पत्नी के रिश्तों में दरार डाल रहे हैं। माँ-बाप और बच्चों के रिश्ते में दरार डाल रहे हैं। समाज जीवन में अनेक लोगों के बीच में दूरी पैदा कर रहे हैं। इस प्रकार से वस्तुएँ बेच रहे हैं तो वस्तुएँ बेचने का यह बहुत ही अनैतिक (Misleading) तरीका शुरू हुआ है । और इसी कारण से हमारे यहाँ पर वस्तुओं की माँग बढती चली गई और हमने इसको प्रगति मान लिया और अब कहा जा रहा है कि समूचा संसार एक हो गया। एक हो जाना चाहिए। कोई बुराई नहीं है, पर इस एक हो जाने का अर्थ है विश्व के बाजारों का एकीकरण। दुनिया के किसी देश में बनने वाला सामान आपको दिल्ली में मिल जाएगा, आपको मुंबई में मिल जाएगा, पुणे में मिल जाएगा और छोट-छोटे स्थानों पर भी मिल जाएगा और ये जो विश्व में अनेकानेक स्थानों पर पैदा होने वाले सामान को नए-नए नाम दिए जा रहे हैं। ये ग्लोबल गुड्स हैं। अर्थात् इन वस्तुओं को खरीदोगे, तो ये वैश्विक स्तर की तुमने चीजें खरीदी

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 13

हैं ऐसा माना जाएगा। तब हम ग्लोबल इलीट्स और ग्लोबल टीन्स (Global elites, Global teans) कहलाएंगे, तो यह स्टेटस सिंबल हो गया। इस प्रकार की चीजें बहुत महँगे दाम वाली हैं, चमचमाती हैं, पैकिंग बहुत अच्छी होती है । परंतु उसके अंदर कुछ है कि नहीं इसका विचार नहीं करना ।

नैतिक मूल्यों का पतन

वैश्वीकरण के कारण से ग्लोबलाइजेशन के कारण से दुनिया के संपन्न देशों में पैदा होने वाले सामान सब देशों के बाजारों में भर गए, तो वहाँ लोकल प्रोडक्ट्स तो खत्म हो रहे हैं। वो तो सेकेंडरी हो गए हैं। जो अच्छे-अच्छे मॉल्स में बड़ी-बड़ी दुकानों में ऐसे सामानों को देखेंगे तो जिनके पास पैसा है वो खरीदेगा पर दुकान के सामने गरीब गुजरता है तो उसके मन में लालसा उत्पन्न होती है कि मैं भी इस प्रकार का सामान खरीदूँ। मेरा भी रुताबा बढ़ जाएगा। मैं भी समाज में बड़ा आदमी माना जाऊँगा। पर वो खरीद नहीं सकता। साधन नहीं हैं, पैसा नहीं है, तो उसके मन में लालसा के साथ-साथ लालसा की इच्छा की पूर्ति न करने के कारण से असंतोष पैदा होता है। वह असंतोष बढ़ते-बढ़ते विद्रोह का रूप ले लेता है। तो इस प्रकार उपभोक्तावादी संस्कृति का निर्माण हो रहा है। कंज्यूमरिज्म का निर्माण हो गया है। इसके कारण से कानून-व्यवस्था की समस्या खड़ी हो गई है। इस प्रकार कंज्यूमरिज्म के आधार पर अपनी उपभोग की प्रवृत्ति (Consumption pattern) को ढालना और जीवन शैली को बनाना मधुर विष जैसा है। यह ऊपर से अच्छा लगता है, मधुर लगता है, मीठा-मीठा लगता है, परंतु शरीर, मन को तो विषैला बना देता है। तो यह भी इस जीवन शैली का दोष अपने को ध्यान में आता है। इस जीवन शैली के बारे में विचार करेंगे तो ध्यान में आएगा कि यह जीवन शैली अमानवीय है और इससे नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है।

विकृत जीवन शैली के कारण सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक संकट खड़ा हो रहा है। सामाजिक दूरियाँ बढ़ रही हैं । सृष्टि-संस्कृति तो नष्ट हो रही है । सांस्कृतिक जीवन मूल्य नष्ट होते चले जा रहे हैं। परिवारों का विघटन हो रहा है । यदि परिवार का प्रमुख व्यक्ति कोई विशेष प्रकार की चीज नहीं खरीद पाता, वैसा जीवन स्तर नहीं अपना पाता है तो इस कारण घर-घर तलाक हो रहे हैं । सामाजिक दूरियाँ बढ़ रही हैं, तो परिवार टूट रहे हैं ।

सामाजिक, सांस्कृतिक विकृतियाँ

इस जीवन शैली के कारण सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक (साइक्लोजिकल) संकट खड़ा हो रहा है। सामाजिक दूरियाँ बढ़ रही हैं। सृष्टि-संस्कृति तो नष्ट हो रही है। सांस्कृतिक जीवन मूल्य नष्ट होते चले जा रहे हैं। परिवारों का विघटन हो रहा है। यदि परिवार का प्रमुख व्यक्ति कोई विशेष प्रकार की चीज नहीं खरीद पाता, वैसा जीवन स्तर नहीं अपना (स्टैंडर्ड एडोप्ट) पाता है तो इस कारण घर-घर तलाक हो रहे हैं। सामाजिक दूरियाँ बढ़ रही हैं, तो परिवार टूट रहे हैं।

इसके कारण से और इसके आगे बढ़कर के आजकल वर्तमान तथाकथित नयी मॉर्डन जीवन शैली के कारण नौजवान विवाहेत्तर संबंध को मान्यता दे रहे हैं। खुलेआम बोल रहे हैं। आज विवाह से पूर्व भी और विवाह के बाद भी किसी नर-नारी से संबंध बना सकते हैं। तो आजकल मॉर्डन सिविलाइज्ड सोसायटी में कौन है हमको चेक करने वाला। यह जो शरीर है, हमारा है, मैं अपने शरीर का मालिक हूँ, मैं अपने शरीर का क्या करता हूँ आप इसमें हस्तक्षेप

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 14

करने वाले कौन होते हैं। इस विचार को मान्यता प्राप्त होती जा रही है।

बढ़ रहे हैं अपराध

धीरे-धीरे इस जीवन शैली के कारण हत्याओं और आत्महत्याओं का दौर चल पड़ा है। विशेषकर युवा पीढ़ी इस शैली के कारण नशे के जंजाल में फँस गई है। नशे में हो गई है और नशेड़ी होने के कारण शरीर और मन की स्थिति खराब हो गई है और इतना ही नहीं हो रहा है—अनाचार बढ़ रहा है। ये जो यौन शोषण की अनेक घटनाएँ हमको ध्यान आ रही हैं, अगर गहराई से विचार करेंगे तो अनेक कारणों में से एक स्वच्छंद यौनाचार है। यह आज की जीवन शैली है, जिसने इस अनाचार को यौनाचार को प्रतिष्ठा का विषय मान लिया गया है। रेव पार्टी होने लगी हैं। युवकों-नवयुवतियों में इसके कारण से कोई लज्जा नहीं है, कोई शर्म नहीं है। उसको भी प्रतिष्ठा का, सम्मान का विषय मान लिया गया है और इतना ही नहीं हुआ, दो उदाहरण और हैं—

विकृत जीवन शैली के कारण हत्याओं और आत्महत्याओं का दौर चल पड़ा है। विशेषकर युवा पीढ़ी इस शैली के कारण नशे के जंजाल में फँस गई है । नशेड़ी होने के कारण शरीर मन की स्थिति खराब हो गई है और इतना ही नहीं–अनाचार बढ़ रहा है। ये जो यौन शोषण की अनेक घटनाएँ हमको ध्यान आ रही हैं, अगर गहराई से विचार करेंगे तो अनेक कारणों में से एक स्वच्छंद यौनाचार है। यह आज की जीवन शैली है, जिसने इस अनाचार को यौनाचार को प्रतिष्ठा का विषय मान लिया गया है।

कुछ वर्षों पहले एक व्हिस्की बार में एक युवक अमीरजादा व्हिस्की पीने गया। बार काउंटर पर कोई लड़की थी। उसका नाम जेसिका लाल था। उसने नवयुवक को व्हिस्की देने में जरा सी देरी कर दी। वह अमीरजादा गुस्से में आ गया और उसने लड़की को कुछ अपशब्द भी बोले, तो लड़की ने प्रतिरोध किया। इससे युवक का गुस्सा सीमा पार कर गया। युवक ने अत्यंत क्रोध में आकर जेसिका लाल की गोली मारकर हत्या कर दी। जेसिका लाल का दोष क्या था? कुछ वर्षों तक यह मामला अखबारों में खूब उछला। जेसिकालाल का मात्र दोष यह था उसने तुरंत युवक को व्हिस्की नहीं दी थी। तो व्हिस्की वाला आदमी कैसा अनाचारी, अत्याचारी हो सकता है इसका उदाहरण है।

एक ऐसा ही दूसरा उदाहरण लखनऊ में घटा। एक व्यक्ति आइसक्रीम लेने एक दुकान में गया। उसने दुकानदार से कहा मुझे कसाटा आइसक्रीम चाहिए। आइसक्रीम के अनेक प्रकार हैं। मेरे जैसा व्यक्ति तो आइसक्रीम वगैरा खाता नहीं है, नाम सुना है। तो दुकानदार बोला साहब कसाटा तो नहीं है। कसाटा खत्म हो गई है, नहीं है। इस समय नहीं है, अरे कैसे खत्म हो गई? कैसे खत्म कर दी? मैं आ रहा था, मैं आने वाला हूँ, तुम्हें पता था। मुझे कसाटा ही लेनी है । बहस बढ़ी तो नवयुवक ने गुस्से में आ कर आइसक्रीम बेचने वाले रघुराम की हत्या कर दी। तो इन दो उदाहरणों का उल्लेख इसलिए किया कि किस प्रकार उपभोग शैली के कारण से इस प्रकार हत्याएँ/आत्महत्याएँ/ अनाचार/ अत्याचार/ हिंसाचार बढ़ते चले जा रहे हैं।

तनाव व मानसिक अवसाद

इस जीवन शैली के कारण से हम रोज देख रहे हैं, तनाव रहने लगा है। टेंशन रहने लगा है। व्यक्ति अवसाद (डिप्रेशन) में चला जाता है। अकेलापन

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 15

लगने लगता है। सूनापन लगने लगा है क्यों? इस प्रकार अगर किसी कारण से कोई इस जीवन शैली को नहीं अपना पाता है तो वह अवसाद में चला जाता है। तनाव हो जाता है। आज ऐसी बहुत सारी दुर्घटनाएँ जो अपने ध्यान में आ रही हैं, उसका कारण भी वर्तमान जीवन शैली ही है।

आजकल अधिकांश चिकित्सा शास्त्री यह मानने लगे हैं कि इस प्रकार की मानसिक, भावनात्मक व शारीरिक आदि जो बहुत सारी बीमारियाँ है, उसका मुख्य कारण ये गलत खानपान है। गलत रहन-सहन है। गलत आचार-विचार है। इस प्रकार की जीवन शैली बदलने की बात आजकल चिकित्सा शास्त्री करने लगे हैं। तो ऐसा कुल मिलाकर वर्तमान दोषपूर्ण जीवन शैली क्या-क्या समस्याएँ लेकर खड़ी है, इसका संक्षेप में उल्लेख किया है।

आजकल अधिकांश चिकित्सा शास्त्री यह मानने लगे हैं कि मानसिक, भावनात्मक व शारीरिक आदि जो बहुत सारी बीमारियाँ है, उसका मुख्य कारण ये गलत खानपान है। गलत रहन-सहन है । गलत आचार-विचार है। इस प्रकार की जीवन शैली बदलने की बात आजकल चिकित्सा शास्त्री करने लगे हैं।

भारतीय धारणक्षम जीवनशैली के मुख्य सूत्र

अब प्रश्न है कि इस समस्या का उत्तर है क्या?, समाधान क्या है? समाधान कहाँ है, तो समाधान के लिए हमको भारतीय पुरातन शाश्वत परंपरा की तरफ लौटना होगा। हमारे मनीषियों ने विद्वानों एवं ऋषियों ने हमारे शास्त्रों में जो कुछ कहा है उसके बारे में विचार करना पड़ेगा। वही जीवन शैली अपनाई जाए तो समाधान होगा।

धारणक्षम जीवन शैली (Sustainable) सरल शब्दों में इसे टिकाऊ कहते हैं। यह लंबी चल सकने वाली जीवन शैली है। हमारी भारतीय शाश्वत धारणक्षम जीवन शैली की क्या-क्या मुख्य बातें हैं, इस पर हमको विचार करना पड़ेगा।

आहार

धारणक्षम जीवन शैली में सबसे महत्त्वपूर्ण है— आहार। आहार आजकल सबसे दुर्लक्षित हो गया है। जानकार लोग, समझदार लोग ऐसा कहते हैं कि जीवन जीने की कला का पहला ककहरा है सही आहार। अगर आपको स्वस्थ जीवन जीना है तो आहार की ओर ध्यान देना होगा। किंतु हमने ध्यान देना छोड़ दिया। महर्षि चरक हमारे चिकित्सा क्षेत्र के बहुत बड़े प्रणेता हुए हैं । ऐसी कथा आती है कि महर्षि चरक के अनेक शिष्य थे जिनको उन्होंने पढ़ाया, सिखाया। उन शिष्यों में से अनेक ख्यातिप्राप्त आयुर्वेदाचार्य बन गए थे। एक बार वे सभी आयुर्वेदाचार्य मिलकर संगोष्ठी कर रहे थे। महर्षि चरक ने सोचा देखूँ तो इन्होंने क्या सीखा, क्या समझा जो मैंने सिखाया । महर्षि चरक एक पक्षी का रूप लेकर निकट के पेड़ पर जा बैठे। उन्होंने आयुर्वेदाचार्यों से प्रश्न किया ''क्या भुक्तं'' (क्या खाना चाहिए), तब आयुर्वेदाचार्यों ने अलग-अलग लंबे- लंबे व्याख्यान दिए, समझाया। तो पक्षी ने कहा, नहीं ये गलत है। तो उनको ध्यान में आ गया यह साधारण पक्षी मात्र नहीं है। फिर सभी आयुर्वेदाचार्य बोले महाराज आप ही बताइये। तो तीन सूत्र महर्षि चरक ने उस समय पर बताए। अब धीरे-धीरे लोगों को यह ध्यान में आ रहा है कि ये महत्त्वपूर्ण आहार सूत्र हैं। महर्षि चरक ने कहा— पहला मित भुक्, दूसरा हित भुक्, तीसरा ऋत भुक्।

मित भुक्

मित भुक्— अर्थात् कम खाना । जितनी भूख है उससे कम खाओ। भरपेट न खाना। तो कम खाओगे तो स्वस्थ रहोगे। अब तो जितनी बार खाना चाहें, जैसा खाना चाहें, जितना खाना चाहें उतना खाया जाता है। अब बहुत सारी बातें ध्यान में आ रही हैं। पेट की बहुत सारी बीमारियाँ हो गई हैं, इसका मुख्य कारण आहार का संयम न रखना ही है।

चरक एवं अन्य विद्वानों ने बहुत विस्तार के साथ यह बताया कि आहार करते समय, भोजन करते समय व्यक्ति को विचार करना चाहिए कि कौन-सा भोजन हितकारी है, कौन-सा अहितकारी है। कौन से खाद्य पदार्थों का सुमेल है और कौन से बेमेल हैं, जिसके साथ चाहे जो नहीं खाना चाहिए। वर्तमान में तो कोई ध्यान ही नहीं देता। अगर हम चरक संहिता को पढ़ेंगे तो अनेक आहार सूत्र को विस्तार से जान पाऐंगे ।

हित भुक्

दूसरी महत्त्व की बात कही कि कौन-सी चीजों को खाना। हित भुक् का अर्थ है हितकारी चीजों को खाना, अहितकारी चीजें नहीं खाना। अब आप मैदा की चीजें खाओगे, बाजार में मिलने वाली चीजों को खाओगे तो बीमार हो ही जाओगे ना । आजकल तो इस प्रकार के फूड्स चल पड़े हैं, उनके कारण से बीमारी ज्यादा आती हैं । व्यक्ति का स्वास्थ्य खराब होता जा रहा है । किंतु समय नहीं है किसी के पास में, इसलिए सुगम और तुरंत खाने के लिए चाहिए । रसोई में खाना बनाने के लिए गृहणियाँ तैयार नहीं हैं। अत: बाजार में मिलने वाले भोजन का ही चलन चल पड़ा है। इसलिए चरक एवं अन्य विद्वानों ने बहुत विस्तार के साथ यह बताया कि आहार करते समय, भोजन करते समय व्यक्ति को विचार करना चाहिए कि कौन-सा भोजन हितकारी है, कौन-सा अहितकारी है।

हमारे शास्त्रों में बहुत विस्तार के साथ इसके बारे में बताया गया है कि कौन से खाद्य पदार्थों का सुमेल है और कौन से बेमेल हैं, जिसके साथ चाहे जो नहीं खाना चाहिए। वर्तमान में तो कोई ध्यान ही नहीं देता। अगर हम चरक संहिता को पढ़ेंगे तो अनेक आहार सूत्र को विस्तार से जान पाऐंगे।

एक बहुत बड़े जैन संत हैं आचार्य महाप्रज्ञ। आचार्य जी ने ''भगवान् महावीर का स्वास्थ्य शास्त्र'' एक पुस्तक लिखी है, उसमें बहुत विस्तार के साथ उन्होंने इसका वर्णन किया है— स्वास्थ्य के लिए कौन-सा हितकारी भोजन है उसका विचार करना चाहिए। किस भोजन का किसके साथ मेल ठीक बैठेगा, उसी भोजन को करना चाहिए। बेमेल भोजन हो तो उसको नहीं करना चाहिए । ऐसे ही गायत्री परिवार संस्थान के आचार्य श्रीराम शर्मा जी ने आहार को लेकर विस्तार से पुस्तकें लिखी हैं। वैसे तो हमारे किसी भी शास्त्र में आप देखेंगे, तो आपको आहार के विषय में मिल जाएगा। गीता को पढ़ेंगे उसमें भी देखेंगे तो भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते समय तीन प्रकार के आहारों का वर्णन किया है— सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। मैं विस्तार में नहीं जाना चाहता। उन्होंने यह बताया है कि सात्विक आहार कौन-कौन सा होता है, राजसी आहार कौन-कौन सा होता है और तामसी आहार कौन-कौन सा होता है। उन्होंने यह भी बताया है कि जिन्हें सात्विक कर्म करना है उन्हें कौन-सा आहार करना चाहिए, जिन्हें तामसिक कार्य करने हैं उनको कौन-सा आहार करना चाहिए और राजसी लोगों का कौन-सा आहार होना चाहिए।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 17

ऋत भुक्

तीसरा ऋत भुक् तो अद्‌भुत सूत्र दिया है महर्षि चरक ने। आजकल के नए जमाने के लोग तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। ऋत भुक् का अर्थ है— नैतिकता का पालन करते हुए ईमानदारी से, न्याय मार्ग से, कानून का पालन करते हुए जो अर्जित किया है, उसी से खरीदे हुए सामान से निर्मित भोजन करना चाहिए। इसको कहते हैं ऋत भुक्। प्रामाणिकता व ईमानदारी की कमाई के भोजन पर तो आजकल कोई ध्यान ही नहीं देता। अप्रामाणिकता की कमाई वाले लोग विविध प्रकार की वस्तुओं का आहार करते हैं। इसीलिए हमको महर्षि चरक ने जो सूत्र दिए हैं, उनके बारे में विस्तार से विचार करना चाहिए।

भोजन बनाते समय, भोजन कराने वाले का, भोजन करने वाले का कैसा भाव है, कैसा व्यवहार है, कैसा विचार है यह भी महत्त्वपूर्ण है। इसका एक बड़ा सूत्र अपने शास्त्रों में मिलता है। ''प्रसन्नमना भुंजीथः'' भोजन करते समय प्रसन्न मन होकर भोजन करें, जो थाली में आ गया है वह प्रसाद है। भगवान् का प्रसाद है, उसको प्रसन्नता से ग्रहण करेंगे तो आपको आनन्द प्राप्त होगा। निरोग रहेंगे।

मनः स्थिति का भोजन पर प्रभाव

भोजन और आहार के संबंध में हमारे मनीषियों ने अनेक तरह की बातों पर विचार किया है। उन्होंने कहा देखो! भोजन बनाते समय, भोजन खिलाते समय और भोजन करते समय, मन के अंदर कैसे विचार हैं इसका प्रभाव पड़ता है आपके भोजन पर। यदि भोजन गृहिणी गुस्से में बना रही है, तनाव में है, मन में शिकायत है, तो भोजन का पदार्थ कहने को तो अच्छा बनाया होगा, किंतु भोजन कारगर नहीं होगा। भोजन करने वाला तनाव में है, अवसाद में है, गुस्से में है, परेशानी में है, समस्याओं में जूझ रहा है तो तथाकथित अच्छे पदार्थ खाने पर भी लाभ नहीं होगा। पहले भोजन बनाने के समय हमारी माताएँ- बहनें भजन बोलती थी। पहले के समय में तो घरों में परिवारों में माताएँ- बहनें चक्की भी पीसा करती थी। मेरी माँ चक्की पीसती हुई, बहुत अच्छा भजन गाती थी। भजन गाती हुई आटा तैयार करती थी। इससे सकारात्मक तरंगें (वाईब्रेशन) उत्पन्न होती हैं। हमारे यहाँ कहा गया है कि भोजन बनाते समय, भोजन कराने वाले का, भोजन करने वाले का कैसा भाव है, कैसा व्यवहार है, कैसा विचार है यह भी महत्त्वपूर्ण है।

इसका एक बड़ा सूत्र अपने शास्त्रों में मिलता है। ''प्रसन्नमना भुंजीथ:'' भोजन करते समय प्रसन्न मन होकर भोजन करें, जो थाली में आ गया है वह प्रसाद है। भगवान् का प्रसाद है, उसको प्रसन्नता से ग्रहण करेंगे तो आपको आनन्द प्राप्त होगा। निरोग रहेंगे। आजकल जितने भी डॉक्टर हैं वो आपको तरह-तरह के विटामिन बताते हैं, लेकिन ये सभी तत्त्व प्रसन्न मन होने पर ही आपके भोजन में आपको सुपरिणाम देंगे।

हमारे शास्त्रों में और भी एक बात कही है। अकेले भोजन नहीं करना चाहिए। यानी केवल स्वयं ही भोजन नहीं करना। आपको परमात्मा ने साधन दिया है तो केवल आपके लिए दिया है क्या? विचार करें, तो उसके लिए तो नहीं दिया। अथर्ववेद में वर्णन आया है 'समानीप्रपा सह वोऽन्नयाग: — हमारे सबके पानी पीने के जल स्थान समान हों। हमारे सबके अन्न भाग समान हों। भोजन करते समय हम संघ के कार्यकर्ता बोलते हैं 'ॐ सहनाववतु सह नौ भुनक्तु' सब मिलकर हम काम करेंगे और सब मिलकर भोजन करेंगे, आहार करेंगे। जो अकेले-अकेले भोजन करता

है, अकेले के लिए पकाता है और किसी अन्य को अपना भोजन नहीं बाँटता है उसको अच्छा नहीं माना गया है। —ऋग्वेद ने तो बहुत सख्त संदेश दिया है— 'केवलाघो भवति केवलादी' अर्थात् जो केवल अपने लिए भोजन बनाता है, अकेले भोजन करता है, वह महापापी है, महादुष्ट है। इसलिए इस प्रकार से भोजन नहीं करना चाहिए। 'एक: स्वादु न भुञ्जित' ऐसा कहा गया है कितना भी स्वादिष्ट भोजन है अकेला नहीं खाना चाहिए। बाँट कर खाना चाहिए ।

भोजन करते समय हम बोलते हैं 'ॐ सहनाववतु सह नौ भुनक्तु' मिलकर हम काम करेंगे और सब मिलकर भोजन करेंगे, आहार करेंगे। जो अकेले-अकेले भोजन करता है, अकेले के लिए पकाता है और किसी अन्य को अपना भोजन नहीं बाँटता है उसको अच्छा नहीं माना गया है। ऋग्वेद ने तो बहुत सख्त संदेश दिया है– 'केवलाघो भवति केवलादी' अर्थात् जो केवल अपने लिए भोजन बनाता है, अकेले भोजन करता है, वह महापापी है, महादुष्ट है।

अमृत और विघस

हमारे शास्त्रों में आहार के संबंध में दो प्रकार के शब्द आते हैं— एक अमृत और दूसरा विघस। यही आहार में रहना चाहिए। अमृत हमारे यहाँ किसको कहा है— यज्ञशेष को। यज्ञशेष अर्थात् हमारे पास जो साधन हैं, जो हमारे पास सामग्री है, भोजन सामग्री के भिन्न- भिन्न पदार्थ हैं, उनको समाज को समर्पित कर देना और जो शेष बचे उसे यज्ञशेष कहते हैं। समाज को समर्पित करने के बाद कुछ शेष बचता है तो यज्ञ प्रसाद मान कर ग्रहण करना चाहिए । यह अमृत तुल्य भोजन है ।

दूसरे प्रकार के प्रमुख आहार को हमारे यहाँ विघस कहा गया है। सबसे पहले आपके परिवार में बुजुर्ग लोग हैं उनको भोजन करायें। तत्पश्चात् छोटे बच्चों को भोजन करायें। फिर अपने घर के नौकर-चाकर हैं उनको भोजन करायें। यदि कोई अतिथि आया है उसको भोजन करायें। इसके उपरांत सबको भोजन कराने के बाद जो भोजन शेष रहे उसको भुक्त शेष यानी विघस कहा जाता है।

हमारे यहाँ तो भोजन और आहार के संबंध में इस प्रकार से बहुत विस्तार के साथ विचार किया गया है। संक्षेप में कहना हो तो आहार संतुलित होना चाहिए, सात्विक होना चाहिए, सुपाच्य होना चाहिए, सीमित होना चाहिए, ऐसा आहार के संबंध में विचार करना पड़ेगा।

हमारी जीवन शैली के बारे में पुन: दुनिया भर में थोड़ी बहुत मात्र में चिंतन प्रारंभ हुआ है पर वर्तमान समय में अगर भारत में हमने स्वयं को पुनर्स्थापित किया तो दुनिया भी हमारा अनुसरण करेगी, हमें फॉलो करेगी।

पहनावा

दूसरी बात जीवन शैली में पहनावा है, रहन-सहन का स्तर है, निवास है। पहनावा कैसा आ गया। पहनावा फैशन के कारण से (टाईट) पैंट्स आ गए हैं। टाईट कपड़े पहनने का रिवाज आ गया है। शरीर अंदर से दिखाई देना चाहिए ऐसे पहनावे आ गए हैं। भारत में तो अधिकांशत: गर्म देश है। तंग कपड़ों के कारण शरीर को हवा लगती नहीं है। शरीर तक प्रकाश पहुँचता ही नहीं है और ऐसे पहनावे के कारण से रोग हो रहे हैं। अनेक प्रकार की बीमारियाँ हो रही हैं। इसलिए हमारे यहाँ पहनावे के बारे में विचार करते समय जलवायु का ध्यान रखना पड़ता है। मौसम का ध्यान रखना पड़ता है। स्थान-स्थान का ध्यान रखना पड़ता है। जो वनवासी क्षेत्र हैं उनका

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 19

पहनावा अलग होगा। ग्रामीण इलाके का पहनावा अलग होगा। पहाड़ी इलाके का पहनावा अलग होगा। मैदानी इलाके का पहनावा अलग होगा। बर्फीले इलाका का पहनावा अलग होगा। सब जगह का पहनावा सब एक जैसा नहीं हो सकता। तो इसके बारे में भी हमारे यहाँ बहुत विस्तार से कहा गया है कि शरीर का पहनावा कैसा होना चाहिए।

एक बार स्वामी विवेकानंद को किसी वेस्टर्न व्यक्ति ने कहा कि तुम्हारा ये तो ढ़ीला-ढ़ाला चौंगा है, ये भी कोई पहनावा है? तुमसे कोई लड़ने-भिड़ने आ गया तो इस बड़े चौंगे को लेकर कैसे लड़ पाओगे। विवेकानंद जी ने बहुत ही सुंदर उत्तर दिया कि तुम हमेशा लड़ने-मरने को तैयार रहते हो। हम तो हमेशा प्रेम और स्नेह के आलिंगन में संपूर्ण संसार को बाँधने के लिए होते हैं। अत: हमारा पहनावा हमेशा लड़ने-मरने के लिए नहीं होता। हाँ, जब युद्ध के मैदान में जाना होता है, तब ऐसा पहनावा पहना जाता है। इसलिए पहनावा के संबंध में भी इस प्रकार का विचार करना चाहिए।

रहन-सहन के तौर-तरीके में श्रम और परिश्रम धीरे-धीरे विलुप्त हो रहा है। परिश्रम करना ही भूल गए हैं हम। इसलिए आजकल के इस कोरोना संकट में यह ध्यान में आ रहा होगा । श्रम और परिश्रम ना करने के कारण से बहुत सारे संकट आ रहे हैं। तो अपने जीवन में हमें परिश्रम को स्थान देना चाहिए। जितना परिश्रम करोगे अपना उतना अच्छा स्वास्थ्य होगा । मेहनत जितनी होगी उतना ही हम बहुत सारी समस्याओं का समाधान कर सकेंगे।

श्रम व परिश्रम

रहन-सहन के तौर-तरीके में श्रम और परिश्रम धीरे-धीरे विलुप्त हो रहा है। परिश्रम करना ही भूल गए हैं हम। इसलिए आजकल के इस कोरोना संकट में यह ध्यान में आ रहा होगा । श्रम और परिश्रम ना करने के कारण से बहुत सारे संकट आ रहे हैं। तो अपने जीवन में हमें परिश्रम को स्थान देना चाहिए। जितना परिश्रम करोगे अपना उतना अच्छा स्वास्थ्य होगा । मेहनत जितनी होगी उतना ही हम बहुत सारी समस्याओं का समाधान कर सकेंगे। इसलिए इस का विचार करके ही हम लोगों और अपने रहन-सहन को पुनर्स्थापित कर सकेंगे।

आवास

आजकल अपने मकानों का डिजाइन भी बदल गया है। पुराने मकानों का विचार करें हम। पुराने मकान इस प्रकार बनाए जाते थे, हमारी जो स्थापत्य शैली थी, उसमें स्वाभाविक रीति से प्रकाश प्रवेश करता था। ताजी हवा प्रवेश करती थी। आजकल तो मकान ऐसे बनने लगे हैं कि हवा तो पहुँच ही नहीं पाती, प्रकाश पहुँच ही नहीं पाता। छोटी-मोटी खिड़कियाँ होती भी हैं तो तथाकथित महँगे पर्दों से उनको बंद कर देते हैं। अत: स्थापत्य कला के बारे में भी मकानों के डिजाइन के बारे में भी फिर से विचार करना पड़ेगा। यदि हम ऐसा विचार करेंगे तो योग्य प्रकार की अपनी भारतीय जीवन शैली ही हो सकती है।

दिनचर्या

तीसरी बात अपनी जीवन शैली में महत्त्व का विषय है—दिनचर्या। दिनचर्या तो बिगड़ गई है हमारी। आजकल के नौजवान तो देर रात को सोयेंगे, भोजन भी देर रात में करेंगे और फिर सूर्योदय के बहुत घंटे बाद देरी से उठेंगे। देरी से सोना, देरी से

खाना, देरी से उठना आजकल इस प्रकार की अपने यहाँ की दिनचर्या हो गई है। इसके कारण से बड़ा नुकसान हो रहा है। व्यवहार शैली वैसी ही हो गई है। जब आपकी योग्य दिनचर्या नहीं रहेगी, किस समय पर कौन-सा काम करना इसका ध्यान नहीं रहेगा तो दिनचर्या बिगड़ जाने के कारण से आप संपूर्ण प्रकार के संकटों को न्योता देंगे।

अन्नं अन्न काले, पाणं पाण काले,
शयणं शयण काले

भगवान् महावीर ने दिनचर्या के संबंध में एक बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया है- 'काले काल समायरे' ऐसा यह सूत्र है— किस काल में कौन-सा काम करना चाहिए इसका विचार करके ही दिनचर्या बनाना चाहिए। आगे समझाया 'अन्नं अन्न काले, पाणं पाण काले, शयणं शयण काले' अर्थात् भोजन के समय भोजन करो, पर आजकल भोजन के समय भोजन करते नहीं है और असमय भोजन करते हैं। वह भोजन पचता नहीं है । रात 11.00 बजे भोजन करोगे तो पचेगा थोड़े ही। इसलिए भगवान् महावीर ने कहा एक समय निश्चित होना चाहिए भोजन का। अन्न के समय पर भोजन करना और पीने के समय पर पानी पीना । पानी के संबंध में आजकल तो बहुत सारी बातें सब डॉक्टर लोग भी कहने लगे हैं। भोजन करते समय पानी नहीं पीना चाहिए। उसको एक समय देना चाहिए। भोजन करने के एक घंटा-डेढ़ घंटा बाद पानी पीना चाहिए और पानी पीने की पद्धति अपने यहाँ बताई है— गटागट पानी नहीं पीना चाहिए। घूँट-घूँट पानी पीना चाहिए। इस प्रकार से पीया गया पानी आपकी पाचन शक्ति को दुरुस्त करेगा ।

भगवान् महावीर ने फिर कहा 'शयणं शयण काले। जब सोने का समय हो तब विश्राम करना चाहिए। सोने के समय जागते रहे देर तक नींद पूरी नहीं हुई। तो फिर शरीर को परेशानी आती है शिथिलता आती है। शरीर का नुकसान होता है। तो दिनचर्या बनाते समय इन बातों का ध्यान रखें।

भगवान् महावीर ने दिनचर्या के संबंध में एक बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया है- 'काले काल समायरे' ऐसा यह सूत्र है– किस काल में कौन-सा काम करना चाहिए इसका विचार करके ही दिनचर्या बनाना चाहिए। आगे समझाया 'अन्नं अन्न काले, पाणं पाण काले, शयणं शयण काले' अर्थात् भोजन के समय भोजन करो,अन्न के समय पर भोजन करना और पीने के समय पर पानी पीना । 'शयणं शयण काले। जब सोने का समय हो तब विश्राम करना चाहिए।

योग-प्राणायाम

वर्तमान की दिनचर्या में योग-प्राणायाम-व्यायाम को स्थान देना चाहिए । अब तो कोरोना के कारण से ही कहो बाबा रामदेव एवं अनेक योगाचार्य बता रहे हैं ना...शरीर की प्रतिरोधी क्षमता (इम्युनिटी पावर) बढ़ानी है तो प्राणायाम योग करो और दुनिया के लोग भारत के योग को स्वीकार कर रहे हैं। ये भारत के लिए ही योग नहीं है, विश्व के लिए, भारत के मनीषियों का योगदान है। केवल भारत के लिए नहीं संपूर्ण विश्व के लिए ये योग प्राणायाम है। योग प्राणायाम विश्व का कल्याण चाहता है। अत: योग और प्राणायाम को अपनी दिनचर्या में स्थान देना चाहिए। मैं बहुत सारे ऐसे लोगों को जानता हूँ जो सुबह से रात्रि तक या तो बैठे-बैठे काम करेंगे या

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 21

भगवान् महावीर ने छः प्रकार के संयम की चर्चा की है- आहार संयम, शरीर संयम, इन्द्रिय संयम, स्वास्थ्य संयम, भाषा संयम और मन का संयम। अब सब विज्ञान इस बात पर जोर दे रहे हैं कि देश व दुनिया में मंगलमय विकास तभी हो सकता है, जब हम सीमित, संयमित व सदाचारी उपभोगशैली व जीवन शैली को अपनायें। आज आवश्यकता है कि हम उपभोगवाद से दूर रहें तथा संयम व सीमाकरण के सिद्धांतों का पालन करें।

फिर वातानुकूलित गाड़ी (एसी) में ही जाना या एसी में ही आना करेंगे। कईयों को तो शरीर में से पसीना निकले हुए वर्षों हो गए हैं। अरे! शरीर से पसीना निकलेगा ही नहीं तो आप स्वस्थ कैसे रह पायेंगे। इसलिए हमें दिनचर्या में इस योग, प्राणायाम, व्यायाम एवं परिश्रम को स्थान देना चाहिए।

आचार-व्यवहार

चौथी बात भारतीय जीवन शैली में बहुत महत्त्वपूर्ण है वह है आचार शैली, यही आपका व्यक्तित्व बनाती है। आपका आचरण कैसा है? शुद्ध आचरण है कि नहीं! इस आचार शैली के बारे में भी जानकारी देंगे। आजकल टीवी पर महाभारत आ रहा है दुर्योधन और युधिष्ठर में फर्क क्या है? आचरण का ही फर्क है और फिर पाँचवी बात है कि हमारे यहाँ संयम पर जोर दिया गया। संयम के द्वारा ही हम जीवन शैली को ठीक कर सकते हैं। हमारे मनीषियों ने संयम को जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इसलिए कहा जाता है कि 'संयमः खलु जीवनम्'।

संयम

भगवान् महावीर ने छः प्रकार के संयम की चर्चा की है— आहार संयम, शरीर संयम, इन्द्रिय संयम, स्वास्थ्य संयम, भाषा संयम और मन का संयम। अब सब विज्ञान इस बात पर जोर दे रहे हैं कि देश व दुनिया में मंगलमय विकास तभी हो सकता है, जब हम सीमित, संयमित व सदाचारी उपभोगशैली व जीवन शैली को अपनायें। आज आवश्यकता है कि हम उपभोगवाद से दूर रहें तथा संयम व सीमाकरण के सिद्धांतों का पालन करें। रासायनिक खेती के स्थान पर जैविक खेती के पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए और अंतत्वोगत्वा हम 'सर्वे भवन्तु सुखिनः', संपूर्ण विश्व का मंगल देखना चाहते हैं, तो हमारी जीवन शैली ऐसी हो जिसके कारण से इस संकट से संपूर्ण विश्व बाहर आ सके। विश्व के लिए ऐसी मंगलकारी जीवन शैली के लिए भारतीय जीवन शैली के सूत्र मैंने रखने का प्रयास किया है।

ॐ शांति, शांति, शांति।

लेखक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उत्तरक्षेत्र संघ चालक व प्रख्यात अर्थशास्त्री हैं। उनका यह आलेख कोरोना महामारी के दौरान दिल्ली प्रांत के चिकित्सक वर्ग को दिए गए व्याख्यान पर आधारित है।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 22

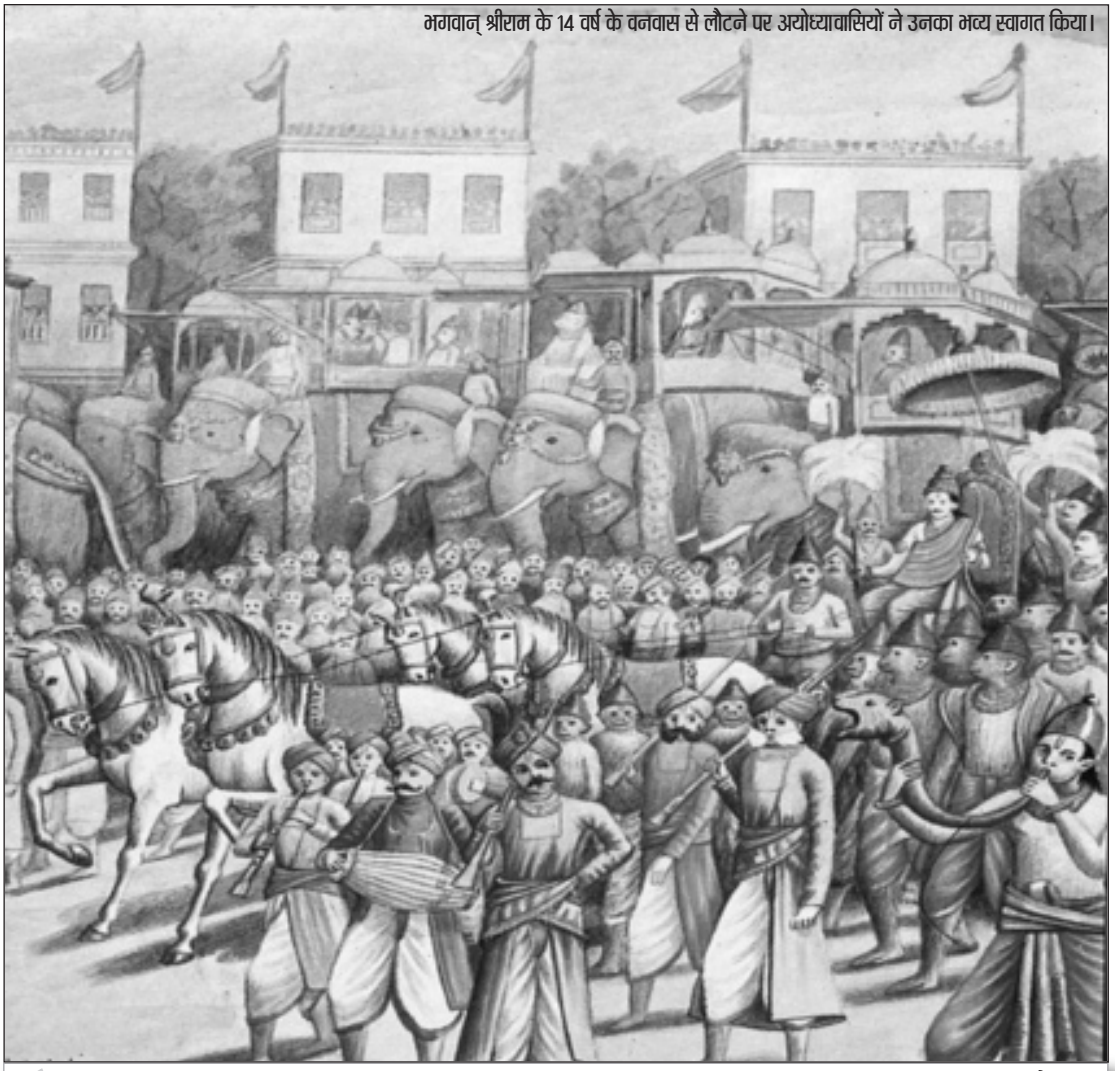

भगवान् श्रीराम के 14 वर्ष के वनवास से लौटने पर अयोध्यावासियों ने उनका भव्य स्वागत किया।

कोरोना महामारी के कारण पूरे विश्व में जब मानव समाज का आवागमन बड़ी तेजी से बढ़ रहा है तब गोस्वामी जी बहुत निकट दिखाई पड़ रहे हैं। एक शब्द चारों ओर सुनाई पड़ रहा है 'प्रवासी'। गोस्वामी जी ने रामचरित मानस में प्रवासी समाज की संघर्षपूर्ण स्थितियों का वर्णन किया है। 'रामचरित मानस में प्रवासी चिंतन' विषय के माध्यम से आज हम उन स्थितियों का स्मरण करना चाहते हैं। प्रत्येक भारतीय को प्रवास पर जाते हुए और प्रवास से आते हुए गोस्वामी जी द्वारा दी गई शिक्षा का स्मरण अवश्य करना चाहिए। प्रवास के संदर्भ में रामचरित मानस का अध्ययन करेंगे तो पाएंगे कि यह ग्रंथ प्रवासी चिंतन का महाकाव्य है। चौदह वर्ष के प्रवास में अनेक कठिनाईयों का सामना राम ने किया है। गोस्वामी जी ने प्रवास उपरांत अयोध्या लौटने का जो वर्णन किया है वह वर्तमान परिस्थितियों में प्रत्येक प्रवासी बंधु और भगिनी के लिए आत्मबल प्रदान करने वाला है।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 23

डॉ नृत्य गोपाल

रामचरित मानस में प्रवासी चिंतन

भारतीय मनीषा को कोटिश: प्रणाम करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी का स्मरण हो रहा है। कोरोना महामारी के कारण पूरे विश्व में जब मानव समाज का आवागमन बड़ी तेजी से बढ़ रहा है तब गोस्वामी जी बहुत निकट दिखाई पड़ रहे हैं। एक शब्द चारों ओर सुनाई पड़ रहा है 'प्रवासी'। गोस्वामी जी ने रामचरित मानस में प्रवासी समाज की संघर्षपूर्ण स्थितियों का वर्णन किया है। 'रामचरित मानस में प्रवासी चिंतन' विषय के माध्यम से आज हम उन स्थितियों का स्मरण करना चाहते हैं। मेरा निवेदन है कि प्रत्येक भारतीय को प्रवास पर जाते हुए और प्रवास से आते हुए गोस्वामी जी द्वारा दी गई शिक्षा का स्मरण अवश्य करना चाहिए। प्रवास के संदर्भ में रामचरित मानस का अध्ययन करेंगे तो पाएंगे कि यह ग्रंथ प्रवासी चिंतन का महाकाव्य है। रामचरित मानस के प्रवासी चिंतन पर चर्चा करने से पूर्व 'प्रवास' शब्द पर विचार करते चलें। 'प्रवास' और 'प्रवासी' दो शब्द हैं। 'प्रवास' शब्द का सामान्य अर्थ है–अपना देश छोड़कर किसी अन्य देश में रहने का भाव या देशांतर अथवा घर छोड़कर यात्रा पर निकलना। 'प्रवासी' शब्द का अर्थ है मूल स्थान छोड़कर अन्य स्थान में बसा व्यक्ति। इधर इस शब्द ने अपना अर्थ विस्तार किया है। एक जो लोग विश्व के सबसे बड़े सेवा संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े हैं वे प्रवास शब्द का व्यावहारिक अर्थ जानते समझते हैं क्योंकि उनके

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 24

लिए यह शब्द मात्र देशांतर नहीं है, वरन् एक साधना का पर्याय है। दूसरे वर्तमान में यह शब्द उस संघर्षशील समाज का द्योतन करा रहा है जो वैश्विक आपदा में स्वयं को न घर का पा रहा है और न घाट का। कुछ को धुंधला-सा लक्ष्य दिखाई पड़ रहा होगा पर बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है जिसे चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई दे रहा है।

गोस्वामी जी ने रामचरित मानस में श्रीराम के प्रवासी जीवन का विशद् वर्णन किया है। यदि उस पूरे परिप्रेक्ष्य में मानस को देखा जाएगा तो यह ग्रंथ प्रवासी जीवन के महाकाव्य के रूप में उपस्थित होगा। यहाँ हम श्री राम के प्रवासी जीवन की चर्चा बहुत बृहद् रूप में न करके दो बिंदुओं को केंद्र में रखेंगे-

एक : प्रवास पूर्व जब श्रीराम अयोध्या की सीमा में अंतिम बार खड़े हैं।

दो : चौदह वर्ष का प्रवासी जीवन पूर्ण कर श्रीराम का अयोध्या में पुनरागमन हो रहा है।

रामचरित मानस के अयोध्या कांड में दोहा संख्या 99 के उपरांत यह संदर्भ आता है कि राम ने अपने पिता के द्वारा संग भेजे गए रथवान सुमंत्र को अब अयोध्या वापस लौटा दिया है। श्रीराम ने वट के दूध से जटाएँ सँवारी हैं। कुछ दूरी पर गंगा का तट है। गंगा के इस पार अयोध्या की सीमा है और उस पार अरण्य प्रदेश आरंभ हो जाएगा। इस अरण्य प्रदेश पर वन्य प्राणियों और वनवासियों का आधिपत्य है। यहाँ तपस्वियों की साधना स्थली हैं। दशरथ चक्रवर्ती सम्राट् हैं पर उनके राज्य अयोध्या की भौगोलिक सीमा और राजनीतिक सत्ता गंगा के इस पार तक है। गोस्वामी जी लिखते हैं -

''बरबस राम सुमंत्र पठाए।
सुरसरि तीर आपु तब आए।

सुरसरि के इस तीर पर अवध क्षेत्र का अंतिम प्रहरी केवट खड़ा हुआ है। इस प्रहरी का कार्य दो सीमाओं के बीच आवागमन सुनिश्चित करना है। श्रीराम गंगा के तट पर एक अनुभवी अवध प्रहरी केवट के सम्मुख खड़े हैं। श्रीराम ने केवट से गंगा के पार उतारने का आग्रह किया है। गोस्वामी जी की यह विशेषता है मानस का कोई भी शब्द मात्र सामान्य अर्थ का द्योतन नहीं करता। एक चौपाई में गोस्वामीजी ने अवध के सांस्कृतिक, राजनीतिक, भौगोलिक और लौकिक आचरण को समाहित कर दिया। उन्होंने कहा—

''माँगी नाव न केवटु आना।
कहहि तुम्हारि मरमु मैं जाना ।''

श्रीराम ने नाव लाने को कहा और केवट ने नाव लाने से मना कर दिया। केवट का नाव ना लाने का तर्क यह है कि मैंने तुम्हारे मर्म को जान लिया है। संत, भक्त, आध्यात्मिक चिंतक और कथाकार इस मर्म शब्द के अनेकानेक अर्थ उपस्थित करते हैं। यहाँ हमें लगता है कि केवट के द्वारा जाना गया मर्म लौकिक व्यवहार का सूचक है। राम के गंगा पार उतरने का कारण क्या है? एक अनुभवी केवट देख

गोस्वामी जी ने रामचरित मानस में श्रीराम के प्रवासी जीवन का विशद् वर्णन किया है। यदि उस पूरे परिप्रेक्ष्य में मानस को देखा जाएगा तो यह ग्रंथ प्रवासी जीवन के महाकाव्य के रूप में उपस्थित होगा। यहाँ हम श्री राम के प्रवासी जीवन की चर्चा बहुत बृहद् रूप में न करके दो बिंदुओ को केंद्र में रखेंगे-एक : प्रवास पूर्व जब श्रीराम अयोध्या की सीमा में अंतिम बार खड़े हैं। दो : चौदह वर्ष का प्रवासी जीवन पूर्ण कर श्रीराम का अयोध्या में पुनरागमन हो रहा है।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 25

रहा है कि मुनि वेशधारी दो कुमार और एक युवती है। कंधे पर धनुष, कमर में तरकश और सिर पर अभी-अभी सप्रयास बनाई हुई जटा हैं। केवट जानता है कि ये वनवासी नहीं हैं । फिर साधना का ब्यौंत भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। यदि साधक होते या साधना का ध्येय लेकर अरण्य में जा रहे होते तो सपरिवार- पति, पत्नी और भाई-नहीं जाते। फिर ये तो धनुष-बाण लेकर जा रहे हैं। जिस केवट के सम्मुख राम खड़े हैं वह नया नाविक नहीं है। यह तो कहता है—

''बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी।
आजु दीन्हि बिधि बनि भलि भूरी।''

गाँव से बाहर निकलते ही हमारी पहचान हमारी मातृभूमि होती है। प्रवासी व्यक्ति की पहचान गाँव, जिला और प्रदेश से होती है। जब हम विदेश में होते हैं तो हमारी पहचान हमारा देश होता है। यह देश भारतीयों ने भूखंड कभी नहीं माना इसे मातृभूमि कहा। भारत माता कहा। भारतीय होना हमें वैश्विक सम्मान दिलाता है। केवट ने राम को मातृभूमि की ताकत का परिचय दिया।

भारत के ग्राम्य जीवन में यह अदभुत क्षमता है कि समय, वेश और शारीरिक संचालन से पथिक के मर्म को वे समझ लेते हैं। गाँव से कोई असमय निकले, कुवेश में निकले अथवा अन्यमनस्क भाव से निकले तो वे तुरंत उसे पहचान जाते हैं। आज राम कुवेश में हैं और संगी पथिक लक्ष्मण भी अन्यमनस्क हैं। अवध राज्य का अनुभवी नागरिक समझ रहा है कि यह बानिक गृहस्थ की अनिवार्य प्रक्रिया चार बर्तनों के एक साथ होने पर खटकने की प्रतिक्रिया है। केवट वरिष्ठ नागरिक होने के दायित्व का निर्वाह कर रहा है। प्रवासी बंधुओं में से यह अनुभव अनेक लोगों को रहा होगा कि यदि वे किसी विवाद के कारण घर से निकले होंगे तो गाँव में उन्हें सहृदयीजनों ने अवश्य रोका होगा। उनका रोकना जाति, धर्म, वर्ग या किसी भी तरह के बंधन से मुक्त होता है। केवट के समझाने पर भी राम अपने निर्णय पर अडिग रहे। उस समय इस वनवासी ने अपने तमाम अनुभव को बटोर कर चुनौती देना शुरू किया। केवट जानता है कि युवाओं का अहंकार जागृत कर उन्हें रोका जा सकता है। उसने कहा

''चरन कमल रज कहुं सबु कहई।
मानुष करनि मूरि कछु अहई।''

राम मैंने सुना है कि तुम्हारी चरण रज में मनुष्य बनाने की क्षमता है। यह तुम्हारा भ्रम है। तुम्हारे चरणों में यह ताकत नहीं है। यह तो इस मातृभूमि में पूर्वजों के पुण्य प्रताप का परिणाम है। एक प्रवासी के लिए मातृभूमि की ताकत का आभास कराना केवट का इस भूमि के प्रति वैयक्तिक अनुराग ही नहीं है वरन् प्रवासी को पुण्यभूमि के प्रति ऋणी बने रहने का दायित्व बोध भी है। गाँव से बाहर निकलते ही हमारी पहचान हमारी मातृभूमि होती है। प्रवासी व्यक्ति की पहचान गाँव, जिला और प्रदेश से होती है। जब हम विदेश में होते हैं तो हमारी पहचान हमारा देश होता है। यह देश भारतीयों ने भूखंड कभी नहीं माना इसे मातृभूमि कहा। भारत माता कहा। भारतीय होना हमें वैश्विक सम्मान दिलाता है। केवट ने राम को मातृभूमि की ताकत का परिचय दिया।

उसने कहा चरणों में जो रज है यह मिट्टी नहीं है। हमारे पूर्वजों के पुण्य प्रताप का बल इसमें है। इसलिए किसी भी प्रवासी को वैयक्तिक ताकत के सहारे देशांतर नहीं करना चाहिए। केवट ने यह भी संकेत कर दिया कि पत्थर को मनुष्य बनाना किसी जड़ी-बूटी का काम नहीं है। फिर भी मानव भले ही

बना दिया जाए पर मानवता मातृभूमि के संस्कार से ही आती है। केवट की गूढ भरी बातें श्रीराम को समझ में आ रही हैं। लक्ष्मण को ये बातें धृष्टता प्रतीत हो रही हैं। लक्ष्मण की मुख मुद्रा उनके भाव केवट तक संप्रेषित कर रही है। केवट का यह प्रहार भी राम को निश्चय से न डिगा पाया। अब बारी थी समाधान की। केवट ने कहा, जाना ही चाहते हैं तो मेरे राष्ट्र की रज भी यहाँ छोड़ जाओ। मातृभूमि का स्मरण हृदय में धारण कर यहाँ से जाओ। प्रवास में यही तुम्हारी शक्ति होगी। लक्ष्मण का आवेश केवट देख रहा था। उसने विनम्रता और दृढ चुनौती प्रस्तुत कर राम लक्ष्मण को बता दिया कि प्रवास सुख नहीं संघर्ष का उद्घोष करता है। प्रवासी को सामान्य सी लोकोक्ति को ध्यान में रखना चाहिए –

'परदेश कलेश नरेशन कूँ ।'

केवट ने अपनी अंतिम बात सामने रख दी–

पद कमल धोइ चढ़ाई नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब सांची कहौं।
बरु तीर मारहुँ लखनु पै
जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ
कृपाल पारु उतारिहौं ।।

समर्थ बलशाली युवा सम्मुख हैं। केवट ने कहा राम आपकी दुहाई है पर अपने राजा दशरथ की सौगंध खाकर कह रहा हूँ कि बिना पग धोए पार नहीं जाने दूँगा। लक्ष्मण मुझे तीर मार सकते हैं पर मैं अपने राष्ट्रधर्म का त्याग नहीं कर सकता। केवट ने श्रीराम को प्रवास गमन की शिक्षा दी। केवट ने मातृभूमि के प्रति जो धर्म निर्वाह सिखाया राम ने चौदह वर्ष तक उसका पालन किया। देश के तत्कालीन बड़े सम्राट बाली को जीता तथा समुद्र पार विदेश में सोने की लंका को विजित किया पर हृदय अयोध्या में रहा—

'जद्यपि सब बैकुंठ बखाना।
बेद पुरान बिदित जगु जाना।
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ।
यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ।''

प्रवासी जीवन की बड़ी चुनौती यह है कि हम अपनी क्षमता और शौर्य से सफलता प्राप्त करें पर स्वयं को संयत रख अपनी मातृभूमि और अपने परिजनों को विस्मृत न करें। ऐसा होने पर प्रवास उपरांत वापिसी कठिन हो जाती है। गोस्वामी जी ने मातृभूमि की महिमा का अदभुत संकेत किया है। प्रत्येक प्रवासी को इस संकेत को समझना चाहिए।

प्रवासी जीवन की बड़ी चुनौती यह है कि हम अपनी क्षमता और शौर्य से सफलता प्राप्त करें पर स्वयं को संयत रख अपनी मातृभूमि और अपने परिजनों को विस्मृत न करें। ऐसा होने पर प्रवास उपरांत वापिसी कठिन हो जाती है। गोस्वामी जी लिखते हैं कि राम ने केवट के स्नेह भरे वचनों को आत्मसात् किया। लक्ष्मण और सीता को आश्वस्त किया। केवट को कहा कि वह शीघ्रता से अपनी इच्छा का पालन करे–

सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन ।।

(रामचरित मानस अयोध्या कांड 100)

कृपासिंधु बोले मुसुकाई।
सोई करु जेहिं तव नाव न जाई।
बेंगि आनु जल पाय पखारू।
होत बिलंबु उतारहि पारू।

इस प्रकार श्री राम का प्रवासी जीवन आज पहली बार आरंभ हुआ। गोस्वामी जी ने मातृभूमि की

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 27

महिमा का अदभुत संकेत किया है। प्रत्येक प्रवासी को इस संकेत को समझना चाहिए। उन्होंने लिखा-

उतरि ठाढ भए सुरसरि रेता।
सीय रामु गुह लखन समेता।

ध्यान देने योग्य है कि गंगा के उस पार श्रीराम के चरणों में लगी मिट्टी 'रज' थी जबकि इस पार आते ही श्रीराम गंगा की रेत में खड़े हैं। केवट को कुछ उतराई नहीं दी। यहाँ से आगे प्रवास संघर्ष के मध्य पति पत्नी को एक दूसरे के हृदय संकेत समझने होंगे। हर स्थिति में संवाद स्थापित हो पाएगा यह अपेक्षा नहीं करनी होगी। राम के मन की बात सीता ने समझी—

प्रवासी बधुंओं को भारतीय ललनाओं की मानसिक दृढता पर विश्वास करना होगा। जैसे प्रवास के समय वे पूरी दृढता के साथ खड़ी रहती हैं वैसे ही वे सामाजिक संरचना को मजबूत करने में अपना योगदान देने वाली हैं। इसलिए प्रवासी मित्रों को निश्चित होकर बालाओं की समर्पण शक्ति पर विश्वास करना चाहिए। इस प्रकार राम एक निश्चित संकल्प के साथ प्रवास पर गए हैं।

''पिय हिय की सिय जाननिहारी।
मनि मुदरी मन मुदित उतारी।''

सीता जी के पास एकमात्र आभूषण सौभाग्य की प्रतीक मुद्रिका है। आज उन्होंने उसे भी उतारने में संकोच नहीं किया। पर, भारतीय संस्कृति की ताकत उसके आचरण में निहित है। सीता ने अपनी तरह से इस आचरण को प्रकट किया और केवट ने अपनी तरह से। राम, लक्ष्मण और सीता के मध्य आपसी समझ से केवट आश्वस्त है कि उसके राष्ट्र का यह प्रवासी अपनी यात्रा पूरी करके आएगा। जो कुछ प्रवास में से यह संजोयेगा उस उपलब्धि में से स्वयं ही उसका हिस्सा आवंटित हो जाएगा। जो केवट अभी तक राम से तर्क कर रहा था वही सीता के व्यवहार से भावुक हो गया। उसने भारतीय ललना के इस व्यवहार के सम्मुख यही कहा—

''बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी ।
आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी।''

राम को प्रवास संघर्ष में लक्ष्मण और सीता का भरपूर साथ मिला। गोस्वामी जी ने एक चौपाई के माध्यम से प्रवासी बंधुओं की एक बड़ी समस्या का समाधान भी किया है। जो प्रवासी बंधु सपत्नीक प्रवास पर गए हैं उनके सम्मुख यह समस्या हो सकती है कि मैं तो किसी स्थिति में बंधु-बांधवों के बीच स्वयं को स्थापित कर लूँगा पर पत्नी कैसे सहज रह पाएगी ? गोस्वामी जी ने लिखा है कि सीता जी ने भारतीय ललनाओं के सामाजिक एकीकरण का संकल्प व्यक्त किया है। माता गंगा से उन्होंने एक ही निवेदन किया—

'' पति देवर संग कुशल बहोरी।
आई करौं जेहि पूजा तोरी।''

पति और देवर के संग पुन: आपकी पूजा कर सकूँ यही निवेदन किया है। प्रवासी बधुंओं को भारतीय ललनाओं की मानसिक दृढता पर विश्वास करना होगा। जैसे प्रवास के समय वे पूरी दृढता के साथ खड़ी रहती हैं वैसे ही वे सामाजिक संरचना को मजबूत करने में अपना योगदान देने वाली हैं। इसलिए प्रवासी मित्रों को निश्चित होकर बालाओं की समर्पण शक्ति पर विश्वास करना चाहिए। इस प्रकार राम एक निश्चित संकल्प के साथ प्रवास पर गए हैं।

चौदह वर्ष के प्रवास में अनेक कठिनाईयों का सामना राम ने किया है। गोस्वामी जी ने प्रवास उपरांत अयोध्या लौटने का जो वर्णन किया है वह वर्तमान परिस्थितियों में प्रत्येक प्रवासी बंधु और भगिनी के लिए आत्मबल प्रदान करने वाला है। जो प्रवासी बंधु

भारत के भीतर या बाहर से यहाँ आ रहे हैं वे तनिक अपने गाँव और देश के बंधु-बांधवों की मनोदशा के प्रति एक बार सोचें। गोस्वामी जी ने उत्तरकांड का आरंभ करते हुए लिखा है—

रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृस तन राम बियोग।।

यहाँ एक एक दिन वर्ष की भाँति व्यतीत हो रहा है। जब से सुना कि आप आ रहे हैं तब से परिवारजनों की, नगरवासियों की और देशवासियों की प्रतीक्षा का आप अनुमान नहीं लगा पाओगे। यहाँ भाई भरत व्यथित हैं—

'कारन कवन नाथ नहिं आयउ।
जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ।'

यहाँ राम को दोष नहीं दिया गया है। भरत स्वयं को दोषी मान रहे हैं। भरत को भरोसा है कि चाहे जो कुछ हुआ हो आप सकुशल घर पहुँचेंगे।

''मोरे जिय भरोस दृढ सोई।
मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई।''

श्री हनुमान जी ने भरत को राम जी के आगमन का संदेश सुनाया। भरत जी की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा -

''जासु बिरह सोचहु दिन राती।
रटहु निरंतर गुन गन पांती।
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता।
आयहु कुसल दवे मुनि त्राता।''

हमारे प्रवासी बंधु ध्यान रखें गोस्वामी जी के अयोध्या सेवक श्री भरत जी अपने बंधुओं के आगमन की दिनरात प्रतीक्षा कर रहे थे तो आज भी भारत का प्रधान सेवक दिन-रात भारत के प्रत्येक प्रवासी को सकुशल भारत में लाने के लिए साधनारत है। आज एक पुष्पक विमान से काम नहीं चल सकता इसलिए 'वंदे भारत मिशन' में जल, थल और वायु मार्ग से सभी को मातृभूमि में लाने का प्रयास किया जा रहा है ।'भारत सतु' और 'श्रमिक स्पेशल' का प्रत्येक दल हमें अपनों के पास आने का आभास करा रहा है।

एहि संदेश सरिस जग मांही।
करि बिचार देखहु कछु नाहीं।

प्रत्येक भारतीय अपनों की प्रतीक्षा तो कर रहा है पर प्रवासी बंधुओं से एक निवेदन है।

प्रवास के कृत्रिम सुख-दुख वहीं छोड़ आना। रामचरित मानस में गोस्वामी जी ने हमें स्वागत का जो तरीका बताया था हमारे पास आज भी वही तरीका है। बिजली की लडियाँ हम नहीं सजा पाएंगे हमारे पास घी के दीपक हैं। तुम्हें याद होगा 5 अप्रैल को रात नौ बजे 9 मिनट के लिए जब हमने अपनी बिजली बंद की थी तो दीपक की रोशनी में भारत दुनिया से निराला देश लग रहा था। हम उन्हीं दीपकों को जलाए बैठे हैं। हमारे पास तेज ध्वनि वाले बैंड -बाजे नहीं हैं जिनसे तुम्हारा स्वागत कर सकें पर वह थाली और घंटी अभी सुरक्षित हैं जो तुम्हारे जन्म पर अम्मा ने बजाए थे। संभव है 22 मार्च को तुमने उनकी मधुर ध्वनि सुनी होगी? गोस्वामी जी ने श्रीराम के प्रवास से लौटने पर स्वागत में जो सामग्री सजाई थी वह थाल आज भी सजा हुआ है—

दधि दुर्बा रोचन फल फूला।
नव तुलसी दल मंगल मूला।
भरि भरि हेम थार भामिनी।
गावत चलि सिधुंर गामिनी।।

दही, दूध, गोरोचन, फल, फूल के संग सभी मंगल की मूल तुलसी के नए-नए पत्ते तुम्हारे स्वागत के लिए सजाए हुए हैं। यह मातृभूमि तुम्हारे सकुशल लौटने की प्रतीक्षा कर रही है।

अवधपुरी प्रभु आवत जानी।
भई सकल सोभा के खानी।
बहइ सुहावन त्रिविध समीरा।

भइ सरजू अति निर्मल नीरा।।

और सुनो मेरे भाई जिन पद कमल से रज हमने धो डाली थी आज उन्हीं चरणों को हम देखना चाहते हैं—

''गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज।

नमत जिन्हहिं सुर संकर अज।।

और हाँ बंधु किसी तरह से मन छोटा मत करना। आओ बहुत दिनों से हमने संग बैठकर हनुमान चालीसा का पाठ नहीं किया है अब संध्या समय संग बैठकर हनुमान चालीसा का पाठ करेंगे। तुम्हारे बिना परिवार का सहभोज अधूरा था आओ इस सहभोज के अधूरेपन को दूर कर दो। आँगन में खड़ा तुलसी का बिरवा नई कोपलों के साथ तुम्हारे स्वागत की

बंधु किसी तरह से मन छोटा मत करना। आओ बहुत दिनों से हमने संग बैठकर हनुमान चालीसा का पाठ नहीं किया है अब संध्या समय संग बैठकर हनुमान चालीसा का पाठ करेंगे। तुम्हारे बिना परिवार का सहभोज अधूरा था आओ इस सहभोज के अधूरेपन को दूर कर दो। आँगन में खड़ा तुलसी का बिरवा नई कोपलों के साथ तुम्हारे स्वागत की प्रतीक्षा कर रहा है। तुम अपनी कॉफी-चाय वहीं छोड़ आना सुबह-सुबह तुलसी के चार पत्ते ही चबा लेना। और सुनो रोज-रोज की भाग दौड़ ने तुम्हें थका दिया होगा आओ थोड़ा सा योगाभ्यास कर तन मन को स्वस्थ बना लो।

प्रतीक्षा कर रहा है। तुम अपनी कॉफी-चाय वहीं छोड़ आना सुबह-सुबह तुलसी के चार पत्ते ही चबा लेना। और सुनो रोज-रोज की भाग दौड़ ने तुम्हें थका दिया होगा आओ थोड़ा सा योगाभ्यास कर तन मन को स्वस्थ बना लो। तुम्हें याद है न जब तुम गाय पालन करते थे तो भारत दुनिया का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश था। हमारी देशी गिर गाय, साहीवाल, थारपरकर, निमारी, डांगी सब तुम्हें अपने पास बुला रही हैं। हम दुनिया के स्वस्थ रहने की राह बनाएंगे। तुमने दुनिया को बहुत आगे बढ़ाया है अब सब संग मिलकर अपने भारत को दुनिया से आगे ले चलते हैं।

और हाँ हमें पता है तुम्हें मार्ग में बड़े संकट झेलने पड़ रहे हैं। पर जब तुम घर से गए थे परेशान तो तुम तब भी हुए होंगे? तुम्हारी दृढता के सामने यह संकट कुछ भी नहीं है। फिर भी ध्यान रखना दुनिया के किसी भी कोने में तुम्हें कोई परेशानी हो रही हो तो अपने हृदय पर हाथ रख तनिक मस्तिष्क को प्रणाम की मुद्रा में लाना। भारत माता को प्रणाम कर लेना। तुम्हें भारत माता के सपूत वहीं खड़े मिल जाएंगे। तुम मातृवंदना भूले तो नहीं हो? बस दो पंक्तियाँ ही उच्चरित कर लेना। अगर भूल गए हों तो मेरे साथ ये दो पंक्तियाँ दोहरा लो—

नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे
त्वया हिंदुभूमे सुखं वर्धितोह्म।
महा मंगले पुण्यभूमे त्वदर्थे
पतत्वेषकायो नमस्ते नमस्ते।।

आओ मेरे प्रवासी बंधुओं आओ। तुम्हारा स्वागत है। अभिनंदन है। गिरिमिटिया मजदूर इस मानस पाठ से दुनिया को जीत गए थे। भारतीय संस्कृति की रक्षा कर उसे श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया था। वही मानस पाठ फिर एकबार तुम्हें आमंत्रित कर रहा है। आओ सभी मिलकर सभी इस मानस का एक बार पुनः पाठ करें।

लेखक हिंदी विभाग, हंसराज कॉलेज नई दिल्ली, दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 30

शिक्षा का उद्देश्य क्या है? क्या रटना और परीक्षा उत्तीर्ण करना ही शिक्षा का उद्देश्य है? क्या लोभ की पूर्ति (अच्छा प्राप्त करना) ही शिक्षा उद्देश्य है? या शिक्षा वह है जो व्यक्ति को लोक और परलोक में भी लाभान्वित करे और उसे समाज जीवन से जोड़े। शिक्षा किसी ग्रंथ को रट लेना नहीं वरन् उसे समझना और आत्मसात् कर तद्नुसार कार्य करना है। भारत में तो कर्मणैव संसिद्धि (कर्म से ही सफलता) की बात कही गई है। मानव जीवन में भाषा और वर्णमाला का महत्त्व सर्वविदित है। भारत की वर्णमाला देवनगरी न केवल ज्ञान का मार्ग है वरन् वह व्यक्ति को परमतत्त्व से भी जोड़ती है। वर्णमाला में 'ॐ' का महत्त्व स्वयंसिद्ध है इसीलिए भारतीय ऋषियों ने 'शब्द' को ब्रह्म स्वरूप माना है। इस समय देश में जब व्यापक स्तर पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति की सर्वत्र चर्चा हो रही है ऐसे समय में शिक्षा और इसके महत्त्व को व्याख्यायित करता प्रस्तुत लेख 'वर्णमाला का अर्थ' बहुत ही सामायिक है।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 31

डॉ शीला टावरी

वर्णमाला का अर्थ

बहुत पुरानी बात है। मतलब कि सैकड़ों वर्ष पुरानी। मिथिलानगरी में कौथुम नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उस समय ब्राह्मणों का काम ही पढ़ना-पढ़ाना होता था। सो उसने लंबे समय तक पढ़ाई करके उस समय जितनी विद्याएँ थीं, उन सभी विद्याओं को पढ़ लिया। वह अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं होने देता था।

कई वर्ष तक पढ़ाई करने के बाद उसने विवाह किया। उसके एक बेटा हुआ। जैसे ही बेटा पाँच वर्ष का हुआ, कौथुम ने उसे पढ़ाना शुरू किया। उस समय आज जैसे न तो प्री-स्कूल थे और न ही बच्चा पैदा होने से पहले से स्कूल में एडमिशन के लिए क्यू में लगने का झंझट था। पर माँ-बाप पर बच्चे को पढ़ाने का उत्तरदायित्व तो हमेशा से रहा ही है। सो कौथुम ने बेटे को पढ़ाने की ठानी। वह स्वयं बहुत पढ़ा-लिखा था ही। फिर अपने बेटे के लिए तो उसके सपने और भी बड़े होना स्वाभाविक ही था।

पर बेटा निकला एकदम विपरीत। उसने केवल वर्णमाला पढ़ी। उस समय यही वर्णमाला मातृका कहलाती थी। सो मातृका पढ़ने के बाद बेटे को और कुछ भी पढ़ना रास नहीं आया। कहाँ तो कौथुम को पूरे के पूरे ग्रंथ कंठस्थ थे और कहाँ उसका बेटा! वह अन्य कोई बात याद ही नहीं करता था। इससे कौथुम बहुत दुखी रहता था।

एक दिन उसने अपने बेटे से कहा, ''बेटा, पढ़ा करो। मैं तुम्हें मिठाई दूँगा। और नहीं पढ़ोगे तो तुम्हारे दोनों कान उखाड़ लूँगा।''

उस समय लोगों को बाल-अधिकारों के बारे में कोई ज्ञान नहीं था।

जब तक उपदेश को केवल पढ़कर याद कर लिया जाता है, उसके वास्तविक अर्थ की जानकारी नहीं कर ली जाती, उसका क्या उपयोग? अर्थ न समझते हुए केवल कंठस्थ करना तो किसी पशु द्वारा बोझ ढोने जैसा ही तो है।'' वास्तव में किसी ग्रंथ को रट लेना शिक्षा है क्या? उसे समझना भी तो चाहिए। तभी तो ज्ञान आत्मसात् होगा। और इन रटी हुई बातों को कर्म में न ढाल सके तो वह रटना किस काम का? विदेह कहलाने वाले जनक जैसों ने भी ''कर्मणैव संसिद्धि'' (कर्म से ही सफलता) पाई थी।

आजकल बच्चे को तो छोड़िए, ये चिल्ड्रेंस राइट्स वाले पहले से ताक में रहते हैं। लेकिन न तो बाप का मिठाई का लालच काम आया और न ही कान उखाड़ने की धमकी से बच्चा डरा। उसने विनयपूर्वक पिता से कहा, ''पिताजी, आप मुझे मिठाई का लालच क्यों दे रहे हैं? क्या मिठाई के लिए पढ़ाई की जाती है? क्या लोभ की पूर्ति ही अध्ययन का उद्देश्य है? रही बात मेरे कान उखाड़ने की। सो वह तो आपका अधिकार है। आप ही ने यह शरीर दिया है और आप ही उसे पाल रहे हैं। सो इतना तो आपका अधिकार है ही। लेकिन इन बातों का अध्ययन से क्या संबंध? अध्ययन तो वह है जो मनुष्य को परलोक में भी लाभ पहुँचाए।''

''क्या यह मेरा बेटा बोल रहा है?'' अभी तक दुखी और चिंतित रहने वाला कौथुम बेटे की बात सुन कर आश्चर्यचकित हो गया था। बेटे का प्रश्न ''क्या लोभ की पूर्ति ही अध्ययन का उद्देश्य है?'' उसे कहीं अंदर तक कचोट गया। प्रत्यक्ष में हम इस 'लोभ की पूर्ति' वाली बात को खुल कर मानते तो नहीं; पर पढ़ने के लिए मिठाई का लालच देना और क्या था? वह बोला, ''बेटा, तूने बात तो बड़ी बुद्धिमत्ता वाली की। पर फिर तू पढ़ता क्यों नहीं?''

बेटा बोला, '' पिताजी, जानने योग्य जो जो था, वह सब मैंने मातृका में ही जान लिया। फिर अब आप ही बताइए, उसके बाद अब मैं अपना गला क्यों सुखाऊँ?''

कौथुम असमंजस में पड़ गया। फिर भी आज जब बात छिड़ ही गयी थी तो उसने सोचा उसे पूरी कर ही लिया जाए। पता नहीं इस लड़के के मन में क्या है? पढ़ाई टालने का बड़ा अच्छा तरीका ढूँढ लिया है इसने। जरा जान तो लें। वह बोला, ''बेटा, ऐसा तुमने क्या पढ़ लिया, मातृका में और क्या जान लिया? जरा मैं भी तो सुनूँ।''

बेटा बोला, ''पिताजी, आप तो हमेशा पढ़ते ही रहते हैं। माँ बता रही थी कि आपने कई-कई वर्षों तक अध्ययन कर कई प्रकार के शास्त्रों को कंठस्थ किया है। पर क्या नाना प्रकार के शास्त्र धर्म की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दे कर चित्त को भ्रमित नहीं कर देते? जब तक उपदेश को केवल पढ़कर याद कर लिया जाता है, उसके वास्तविक अर्थ की जानकारी नहीं कर ली जाती, उसका क्या उपयोग? अर्थ न समझते हुए केवल कंठस्थ करना तो किसी पशु द्वारा बोझ ढोने जैसा ही तो है।''

बेटा यह सब सहजता से बोल रहा था। पर उसकी बात ने कौथुम को अंदर तक झकझोर डाला। आज तक वह अपने बेटे को जड़बुद्धि समझ रहा था। सामान्यत: उस पढ़ाई-लिखाई न करने वाले बालक से कौथुम खिन्न ही रहता था। पर आज उसी बेटे ने पिता के मर्म पर आघात किया था। वास्तव में किसी ग्रंथ को रट लेना शिक्षा है क्या? उसे समझना भी तो चाहिए। तभी तो ज्ञान आत्मसात् होगा। और इन रटी हुई बातों को कर्म में न ढाल सकें तो वह

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 33

रटना किस काम का? विदेह कहलाने वाले जनक जैसों ने भी ''कर्मणैव संसिद्धि'' (कर्म से ही सफलता) पाई थी। क्या कौथुम का स्वयं का पढ़ना-लिखना किसी पशु के भार ढोने जैसा नहीं है? उसने भी तो कितने ही ग्रंथ बस रटे ही हुए थे—उनका मतितार्थ जाने बिना।

इसी सोच के चलते बच्चे के प्रतिवाद पर कौथुम को क्रोध नहीं आया। अपितु उसकी उत्सुकता और बढ़ गई। उसके विचार रुक नहीं रहे थे। पर प्रकट में उसने बच्चे से कहा, ''और क्या-क्या जान लिया तुमने मातृका में?''

''सबसे पहले आपने ही मुझे ओंकार सिखाया था। इसमें अकार ब्रह्म हैं, उकार भगवान् विष्णु और मकार भगवान् महेश्वर के प्रतीक हैं। ओंकार के ऊपर जो अनुस्वार रूप अर्धमात्रा है वह स्वयं सदाशिव हैं।''

कौथुम बेटे की बात सुन कर बड़ा प्रसन्न था। यह उतना जड़बुद्धि नहीं दीखता जितना मैं उसे समझ रहा था। बोला, ''आगे भी बताओ। मातृका अभी तो आगे भी हैं।''

''जी पिताजी।'' बेटा उसी मासूमियत से बोला- ''मातृका में अकार से औकार तक चौदह स्वर हैं। वे हैं चौदह मनु। स्वायंभुव, स्वारोचिश, औत्तमि, रैवत, तामस, चाक्षुश और वैवस्वत ये तो हुए पहले सात और अगले सात हैं सावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, दक्षसावर्णि, धर्मसावर्णि, रौच्य तथा भौत्य। आगे 'क' से लेकर 'ह' तक तैंतीस देवता हैं। उनमें 'क' से लेकर 'ठ' तक तो बारह आदित्य माने जाते हैं, 'ड' से 'ब' तक के ग्यारह अक्षर ग्यारह रुद्र हैं। 'भ' से 'श' तक के आठ अक्षर ही आठ वसु हैं। आखरी वाले दो अक्षर 'स' और 'ह' हैं दो अश्विनी कुमार। ये तैंतीस अक्षर ही तैंतीस कोटि अर्थात् तैंतीस प्रकार के देवता हैं। स्वररूपी चौदह मनु मार्गदर्शी नियम और शास्त्र बन कर इनके साथ चलते हैं और इनको विविध आकार देते हैं। ये सब अक्षर मिलकर ही कोट्यवधि शब्द बनते हैं और शब्द ही ब्रह्मस्वरूप है। जो मनुष्य इन देवताओं का आश्रय लेकर कर्म करते रहते हैं उन्हीं को श्रेष्ठ पद की प्राप्ति होती है। जो शब्द का योग्य अर्थ समझ ले, उसका योग्य प्रयोग करना जान ले समझो उसने सबकुछ सीख लिया। क्योंकि लिखना-पढ़ना सीखने से ज्ञान के सभी मार्ग खुल जाते हैं।''

कौथुम बेटे की बातें सुन कर अवाक् रह गया। भावविभोर होकर उसने अपने पुत्र को गोद में उठा लिया।

कहानी आगे भी है पर विस्तारभय से उसे यहीं पर समाप्त करते हैं। यह भी बता दें कि यह कहानी मेरी कल्पना नहीं है। 'स्कंदपुराण' के माहेश्वरखंड में आई हुई यह कहानी, थोड़े भाषाई बदलाव के साथ, लगभग वैसी-की-वैसी आपके सामने रखी है।

बेटे की बात सुन कर कौथुम जितना अवाक् रह गया होगा, सच मानिए, उससे ज्यादा चकित हम हैं। हमारी वर्णमाला में इतना अर्थ छुपा है? ज्ञान का मार्ग दिखाने वाले (या आज की भाषा में यूँ कहिए कि

'क' से लेकर 'ठ' तक तो बारह आदित्य माने जाते हैं, 'ड' से 'ब' तक के ग्यारह अक्षर ग्यारह रुद्र हैं। 'भ' से 'श' तक के आठ अक्षर ही आठ वसु हैं। आखरी वाले दो अक्षर 'स' और 'ह' हैं दो अश्विनी कुमार। ये तैंतीस अक्षर ही तैंतीस कोटि अर्थात् तैंतीस प्रकार के देवता हैं। स्वररूपी चौदह मनु मार्गदर्शी नियम और शास्त्र बन कर इनके साथ चलते हैं और इनको विविध आकार देते हैं। ये सब अक्षर मिलकर ही कोट्यवधि शब्द बनते हैं और शब्द ही ब्रह्मस्वरूप है।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 34

तैंतीस अक्षर ही तैंतीस कोटि-तैंतीस प्रकार के-पवित्र देवता...? ज्ञान का इतना सम्मान? क्या इसीलिए हमारी इस लिपि को 'देवनागरी'-अक्षररूपी देवों की सहायता से (ग्राम्यों को) नागर बनाने वाली- कहते हैं? और यह विचार जिन ग्रंथों में अगली पीढ़ियों के लिए संजो कर रखा है, हमने उन्हीं ग्रंथों को कपोलकल्पित मान कर भुला दिया ?... इससे बड़ी विकृति क्या हो सकती है? सोच-सोच कर मन ग्लानि से भर जाता है।

Learning to Learn का मार्ग प्रशस्त करने वाले) इन अक्षरों को ही हमने तैंतीस कोटि देवता माना है? गीता में पढ़ा था, ''न हि ज्ञानेन सदृषं पवित्रमिह विद्यते।'' लेकिन ज्ञान का मार्ग दिखाने वाले ये तैंतीस अक्षर ही तैंतीस कोटि-तैंतीस प्रकार के-पवित्र देवता... ? ज्ञान का इतना सम्मान? क्या इसीलिए हमारी इस लिपि को 'देवनागरी'-अक्षररूपी देवों की सहायता से (ग्राम्यों को) नागर बनाने वाली- कहते हैं? और यह विचार जिन ग्रंथों में अगली पीढ़ियों के लिए संजो कर रखा है, हमने उन्हीं ग्रंथों को कपोलकल्पित मान कर भुला दिया ?... इससे बड़ी विकृति क्या हो सकती है? सोच-सोच कर मन ग्लानि से भर जाता है।

यह तो सुना था कि हमारी वर्णमाला बहुत ही शास्त्रशुद्ध तरीके से व्यवस्थित है। परंतु यह तो इह और परलोक को ऐसे जोड़ती है- यह कल्पनातीत है। स्वर और व्यंजनों का ऐसा अनुपम वर्गीकरण विश्व में अन्य कहीं भी देखने को नहीं मिलता। फिर मानवी स्वरयंत्र की कार्यप्रणाली के अनुसार उनका संयोजन है-जैसे कि 'क' वर्ग के व्यंजनों के उच्चारण में कंठ का प्रयोग होता है, तो वे व्यंजन 'कण्ठ्य' कहलाए। सारे 'कंठ्य' व्यंजन एक साथ रखे गए हैं। इसी प्रकार से 'च', 'ट', 'त' और 'प' वर्गों के उच्चारणों में क्रमशः तालू, मूर्धा-दाँत और ओठों का प्रयोग होने से वे क्रमानुसार तालव्य, मूर्धन्य, दंत्य और ओष्ठ्य कहलाते हैं। अब इस रचना की भी विशेषता दंग कर देने वाली है। वर्णमाला में यह रचना कंठ से प्रारंभ हो कर मनुष्य के मुख में क्रम से बाहर की ओर आने वाली तंत्रियों के अनुसार है-जैसे अनुक्रम से 'क' वर्ग (कंठ्य), 'च' वर्ग (तालव्य), 'ट' वर्ग (मूर्धय), 'त' वर्ग (दंत्य), और 'प' वर्ग (ओष्ठ्य)।

वर्णमाला का वर्गीकरण यहीं पर समाप्त नहीं होता। प्रत्येक वर्ग में पाँच व्यंजन हैं। इनके सबके प्रारंभिक दो वर्ण 'अघोष' और बाद वाले तीन 'सघोष' वर्ण कहलाते हैं। अघोष वे हैं जिनके उच्चारण में स्वरतंत्रियों में कंपन नहीं होता और सघोष वे हैं जिनमें कंपन होता है।

अगला वर्गीकरण है मुँह से जिस अनुपात में हवा निकलती है उसके अनुसार। इस क्रम में प्रत्येक वर्ग का पहला, तीसरा और पाँचवा व्यंजन 'अल्पप्राण'- कम हवा वाला है और दूसरा और चौथा व्यंजन

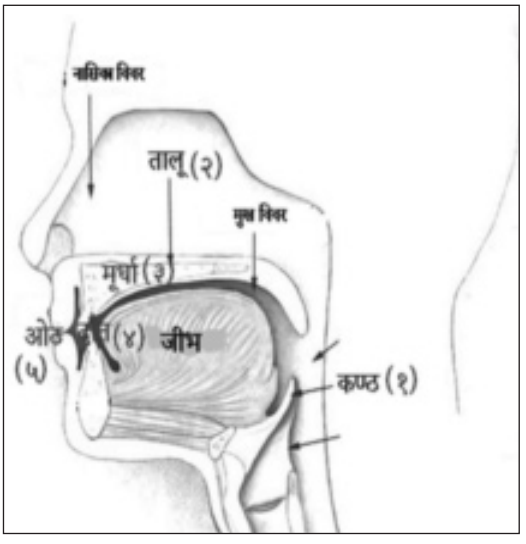

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 35

'महाप्राण' है–इनके उच्चारण में मुँह से अधिक हवा निकलती है और 'ह' जैसी ध्वनि होती है। इसी प्रकार से य, र, ल और व अल्पप्राण और श, ष, स ह ये महाप्राण हैं। य,र,ल और व के उच्चारण स्वर और व्यंजन के बीच के होते हैं। इसलिए इन्हें 'अंतस्थ' वर्ण कहा जाता है।

वर्गीकरण आगे और भी है। किन वर्णों के उच्चारण में हवा किन तंत्रियों से कैसी और कितनी रगड़ खा रही है उसके अनुसार श, ष, स, और 'ह' 'ऊष्म' व्यंजन कहलाते हैं।

यह सब दिमाग को चकराने वाला है। आश्चर्य होता है यह सोच कर कि मानव शरीर की रचना और उसकी कार्यप्रणाली का कितना सूक्ष्म अध्ययन कर यह वर्णमाला बनाई गई होगी और यह सब कितना वैज्ञानिक, कितना शास्त्रशुद्ध है। वर्णमाला किसी भी भाषा की नीवँ होती है। जिस भाषा की नीवँ इतनी सशक्त हो उसके क्या कहने? यही बात आगे चल कर इस भाषा की शब्द रचना की है।

कहीं पढ़ा था, अँग्रेजों के आने से पहले भारत में शायद ही कोई निरक्षर था। इस आलेख का उद्देश्य कोई नया बखेड़ा खड़ा कर चर्चा में आना नहीं है। पर किसी समय भारत में निश्चित ही ऐसी स्थिति रही होगी। और उसका कारण था अक्षरों को ही ईश्वर और अक्षरज्ञान को ही ईश्वरज्ञान माना जाता था। इन तैंतीस अक्षरों में ही हमने तैंतीस कोटि देवताओं के दर्शन कर लिए थे। इसीलिए गीता में भगवान् स्वयं को 'शब्दः खे' (आकाश में मैं शब्दरूप से विद्यमान हूँ।) कहते हैं। (श्रीमद्भगवद्गीता–7/8)।

सही अक्षरज्ञान ज्ञान के खजाने का प्रवेशद्वार है। जो ज्ञान हो वह संपूर्ण हो, सांगोपांग हो, विचारों को संचारित करने वाला हो, जिससे सीखने के आगे के सारे द्वार खुल सकें। जिस सूक्ष्मता से यह अक्षरज्ञान करवाया गया होगा, उसमें केवल वर्णमाला रटना या लिखना ही नहीं, अपितु किसी विषय को उसके मर्म तक जानने की वृत्ति का भी विकास अंतर्भूत होगा। यही ज्ञानपिपासा, ज्ञान की प्यास, मानवजाति के विकास की कुंजी है। श्रद्धा और विश्वास से जो इस ज्ञानरूपी ईश्वर की आराधना करते हैं वे ही सफलता प्राप्त करते हैं। इन्हीं श्रद्धा और विश्वास को 'भवानीशंकरौ' कह कर अपने अंतस्थ ज्ञानरूपी ईश्वर के दर्शन के लिए तुलसी उनकी पूजा करते हैं।

''न हि ज्ञानेन सदृषं पवित्रमिह विद्यते।'' (ज्ञान जैसा पवित्र इस दुनिया में और कुछ भी नहीं है।) ऐसा मानने वाले और सदैव नए–नए ज्ञान की खोज में लगे हुए सुशिक्षित समाज ने ही इस राष्ट्र को सोने की चिड़िया बनाया था। इसीलिए शिक्षा सार्वत्रिक थी। वेदों में ऐसे उद्धरण यत्र–तत्र भरे पड़े हैं कि सभी को शिक्षा दो। चारों वर्णों के सभी स्त्री–पुरुषों को शिक्षित करो।

कहानी में तो और भी बहुत कुछ कहा गया है। बालक के प्रश्न ''क्या मिठाई के लिए पढ़ाई की जाती है? क्या लोभ की पूर्ति ही अध्ययन का उद्देश्य है?'' क्या आज भी उतने ही–या शायद

सही अक्षरज्ञान ज्ञान के खजाने का प्रवेशद्वार है। जो ज्ञान हो वह संपूर्ण हो, सांगोपांग हो, विचारों को संचारित करने वाला हो, जिससे सीखने के आगे के सारे द्वार खुल सकें। जिस सूक्ष्मता से यह अक्षरज्ञान करवाया गया होगा, उसमें केवल वर्णमाला रटना या लिखना ही नहीं, अपितु किसी विषय को उसके मर्म तक जानने की वृत्ति का भी विकास अंतर्भूत होगा। यही ज्ञानपिपासा, ज्ञान की प्यास, मानवजाति के विकास की कुंजी है।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 36

उससे भी अधिक प्रासंगिक नहीं है? आज ज्ञान की भूख के लिए कितने लोग पढ़ते हैं? पढ़ाई का परम उद्देश्य नौकरी पाना हो गया है। और हम सब अपने बच्चों को कौथुम जैसा बना रहे हैं। पूरी शिक्षाव्यवस्था किताबें रट कर परीक्षा लिखने पर केंद्रित है। जो जितना अच्छा रट कर परीक्षा लिख सके, उसके उतने ज्यादा नंबर आएंगे। फिर उसी की एडमिशन, उसी की नौकरी। न जाने कितना पढ़े, कितनी डिग्रियाँ ली और फिर वही कि कोई हमें नौकरी दे दे। मुझे याद है पढ़ते समय हमारे विद्यापीठ का ब्रीदवाक्य था–''य: क्रियावान् स पण्डित:।'' कहाँ है 'क्रिया'? बेचारे कबीर जी कहते ही रह गए, ''पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।'' लेकिन आजकल तो माता–पिता में स्पर्धा लगी हुई है, बच्चा केवल पढ़े। ''अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तर:।'' (यह मेरा हाथ भगवान् है और यह दूसरा हाथ उससे भी बढ़ कर है।–ऋग्वेद 10/60/12) कहने वाले देश में हाथों का काम निकृष्ट ही रह गया। माताएँ बड़ी शान से कहती हैं कि हमने अपनी बिटिया से कभी पानी का गिलास नहीं उठवाया। बड़ी नाजों से पली है हमारी लाडली।

अपने आदर्शों से कितने भटक गए हैं हम। बातें हम मूल्यों की करते हैं; कृतिपूर्ण शिक्षा की करते हैं और उसके परमोच्च आदर्श रामायण और महाभारत को 'कट्टरता' के भय से हमारी शिक्षा से बाहर कर देते हैं। राम-लक्ष्मण राजकुमार थे। उसी प्रकार पांडव भी राजकुमार ही थे। सीता और द्रौपदी-दोनों राजघरानों में पली थी। इन सबको वनवास में जाना पड़ा।

अपने आदर्शों से कितने भटक गए हैं हम। बातें हम मूल्यों की करते हैं; कृतिपूर्ण शिक्षा की करते हैं और उसके परमोच्च आदर्श रामायण और महाभारत को 'कट्टरता' के भय से हमारी शिक्षा से बाहर कर देते हैं। राम–लक्ष्मण राजकुमार थे। उसी प्रकार पांडव भी राजकुमार ही थे। सीता और द्रौपदी–दोनों राजघरानों में पली थी। इन सबको वनवास में जाना पड़ा। जीवन के कटु सत्यों का सामना उन्होंने धैर्य, शौर्य और शांति से किया। उनके साथ कोई सेवकों की टोलियाँ नहीं गयी थी। अज्ञातवास में तो द्रौपदी सह पाँचों पांडवों ने राजा विराट के राजमहल में जो जो काम किये वे ऐसी कुशलता से किए कि कोई पूरे वर्षभर में पहचान तक नहीं पाया कि ये लोग उस शक्तिशाली राजघराने से हैं जहाँ ऐसे काम करने के लिए सेवकों की टोलियाँ हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। क्या कृतिपूर्ण शिक्षा–दीक्षा और कठोर अभ्यास के बिना यह संभव होता? (लेकिन हमारे इन महान् ग्रंथों से यह सब सीखने के बजाय रामायण और महाभारत ये कैसे मनगढंत हैं यही सिद्ध करने में लगे रहे।)

इस कहानी में एक और बात है। पिता बच्चे के कान उखाड़ने की बात करता है। सौभाग्य से हमारे बचपन तक पिताओं का वही ब्रैंड मौजूद था। कान उखाड़ना तो कोई खास बात ही नहीं लगती। पिता और शिक्षक दोनों लोग सजा देने के विषय में खासे क्रिएटीव दिमागवाले और हिम्मतवाले भी हुआ करते थे। बाप रे बाप! (इसी कारण मराठी भाषा में 'बापमाणूस' यह शब्द निकल पड़ा।) फिर पता नहीं पिताओं का वह ब्रैंड एकदम जैसे बंद ही हो गया। शिक्षकों की भी वही बात! एक तरफ कारपोरल पनिशमेंट का कानून तो दूसरी ओर बाल अधिकार। कुआँ और खाई से भी खतरनाक! कौन बला मोल ले? तब घर से डाँट पड़ती थी कि स्कूल में मास्टर जी को बता देंगे।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 37

घरवाले वाकई में शिक्षकों से कहते थे-''पीट-पीट कर इसे सीधा कर दीजिएगा।'' पीट-पीट कर भुर्ता बना देना भी इसी के अंतर्गत आता था। सीधा करे या टेढ़ा, भुर्ता बनाए या मुर्गा- शिक्षक इतने समर्थ्य थे कि मजाल है कोई कहीं शिकायत करे! गया वो जमाना! और चला गया उसी के साथ शिक्षकों का शिष्यों के प्रति समर्पणभाव और पुत्रवत् प्रेम! (पर हम आज भी उन्हीं शिक्षकों की मन ही मन पूजा करते हैं।)

अब एक गंभीर बात। इस कहानी में बच्चा अपने पिता से बिना किसी डर के अपनी बात कहता है- कान उखाड़ने की धमकी के बावजूद! पिता भी उसे बिना उत्तेजित हुए सुन लेता है। इस बालक की पढ़ाई के प्रति बहुत अच्छी धारणा न होते हुए भी वह बालक के मन में क्या चल रहा है यह जानने का प्रयास करता है। आज के समाज जीवन में क्या इसका कोई स्थान है? बच्चे के मन की तो कौन कहे, वह खुले आम क्या करता है, क्या पढ़ता है, कौन-सी फिल्में या वीडियो देखता है, किसकी संगत में है, उसके मित्र कौन हैं-अर्थार्जन और मौजमस्ती की चूहादौड़ में माता-पिता को यह सबकुछ नहीं मालूम। एक ही जिंदगी मिली है जीने को। उसे अपने हिसाब से जी लो। फिर किसी दिन अचानक(?) बच्चा नशे में धुत्त स्थिति में मिलता है, स्मगलरों या आतंकवादियों की टोली में मिलता है, उसके द्वारा बलात्कार किये जाने की खबर मिलती है...या महीने में लाखों कमाने वाले उच्चपदस्थ माँ-बाप का बेटा आत्महत्या कर लेता है...दोष किसका?

अब एक गंभीर बात। इस कहानी में बच्चा अपने पिता से बिना किसी डर के अपनी बात कहता है-कान उखाड़ने की धमकी के बावजूद! पिता भी उसे बिना उत्तेजित हुए सुन लेता है। इस बालक की पढ़ाई के प्रति बहुत अच्छी धारणा न होते हुए भी वह बालक के मन में क्या चल रहा है यह जानने का प्रयास करता है। आज के समाज जीवन में क्या इसका कोई स्थान है? बच्चे के मन की तो कौन कहे ?

इस पूरी कहानी को पढ़ कर ऐसा लगता है मानों बच्चा ही अपने पिता को शिक्षा दे रहा है। यही है- ''बालादपि सुभाशितं ग्राह्यम्।'' यह सोचना केवल भ्रम है कि शिक्षा किसी का एकाधिकार था। समाज जीवन में इतना लचीलापन और मस्तिष्क में इतना खुलापन था कि शिक्षा महत्त्वपूर्ण थी फिर वह चाहे जिससे प्राप्त हो।

'बृहदारण्यक उपनिषद्' में आनेवाली आरुणेय श्वेतकेतु की कथा तो इससे भी थोड़ा आगे जाती है। ब्राह्मण पिता की संतान होने के कारण जब श्वेतकेतु क्षत्रिय राजा प्रवाहण से ज्ञान प्राप्त करने के लिए राजी नहीं हुआ तो पिता अकेले ही राजा के पास पहुँचे और ज्ञानप्राप्ति के लिए प्रार्थना की। राजा ने भी उससे वचन लिया कि ज्ञान तो शास्त्रों द्वारा कही हुई रीति से ही प्राप्त हो सकता है। अत: उसे राजा के पास शिष्यभाव से ही रहना होगा और वह भले ही ब्राह्मण हो, शिष्य होने के नाते वह राजा की अवज्ञा नहीं करेगा। 'विद्याविनयसंपन्न' होने के कारण ही ब्राह्मण पूजनीय थे। परंतु विद्याविभूषित ज्ञानदाता को ब्राह्मण या क्षत्रिय, बाल अथवा वृद्ध इस दृष्टि से नहीं देखा जाता था। 'गुरु' का सम्मान और अधिकार सर्वोपरि था। विद्या का यह प्रवाह इसी प्रकार अबाध गति से चलते रहने के कारण ही भारत देवभूमि रहा और स्वर्णभूमि भी! क्या यह सब हमें सोचने को मजबूर नहीं करता ?

लेखिका पर्यावरणविद् और शिक्षाविद् हैं।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 38

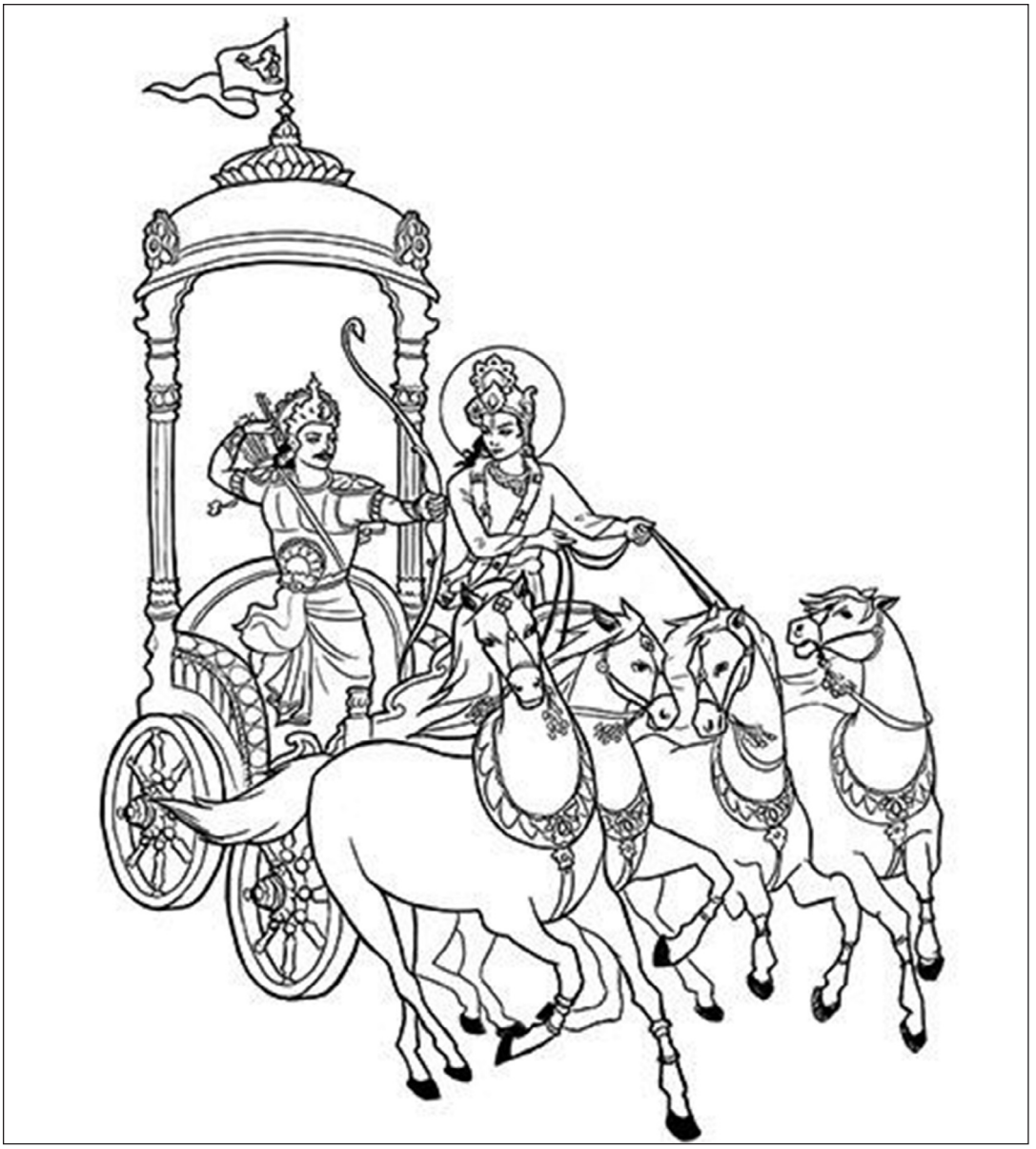

श्रीकृष्ण भारतीय जीवन में व्याप्त एक ऐसे सांस्कृतिक ऐतिहासिक महापुरुष हैं जिन्हें उनके जीवनकाल में ही भगवान् माना जाने लगा था। लोक संस्कृति के रक्षक, सड़ी-गली अनुपयोगी रूढियों के विध्वंसक, क्रांतिकारी, प्रचंड योद्धा, अद्वितीय संगठनकर्ता, नूतन मूल्यों के उद्‌गाता, वैचारिक क्रांति को व्यावहारिक रूप देने में सक्षम नेता, सत्यशोधक और कला और शक्ति दोनों के संतुलन के चरम बिंदु पर खड़े कृष्ण किसी भी युग के लिए आदर्श हो सकते हैं।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 39

डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर

वैचारिक क्रांति के अग्रदूत श्रीकृष्ण

श्री कृष्ण भारतीय जीवन में व्याप्त एक ऐसे सांस्कृतिक ऐतिहासिक महापुरुष हैं जिन्हें उनके जीवनकाल में ही भगवान् माना जाने लगा था। लोक संस्कृति के रक्षक, सड़ी-गली अनुपयोगी रूढियों के विध्वंसक, क्रांतिकारी, प्रचंड योद्धा, अद्वितीय संगठनकर्ता, नूतन मूल्यों के उद्गाता, वैचारिक क्रांति को व्यावहारिक रूप देने में सक्षम नेता, सत्यशोधक और कला और शक्ति दोनों के संतुलन के चरम बिंदु पर खड़े कृष्ण किसी भी युग के लिए आदर्श हो सकते हैं। नरेश मेहता ने माना है कि हर युग ने अपने प्रश्नों के उत्तर और अपनी समस्याओं के 'समाधान' राम और कृष्ण के चरित्र में ही खोजे हैं। गीत काव्य की आदि विधा है। ब्रह्मांड में सर्वत्र एक लय व्याप्त है, ऋतु परिवर्तन, सूर्य का उदयास्त, पवन का गतिमय संचलन, सरिताओं के प्रवाह का निपतन, पृथ्वी का सूर्य और चंद्रमा का पृथ्वी का गतिमय परिभ्रमण, पक्षियों का कलरव, कोमल किसलयों की मर्मर ध्वनि, कभी-कभी विध्वंस रचती झंझाओं का भैरव नर्तन, मधुऋतु में पुष्पों की मुस्कान, भ्रमरों का गुंजन, पावस में मेघों का गर्जन, मयूरों का नर्तन और झींगुरों की झंकार, शरद की निशा में चाँदनी का अछोर विस्तार और श्रम से सँवरती निखरती जिंदगी के स्वेद कण सब में एक लय व्याप्त है। यह लय जब शब्द और संगीत का आश्रय लेकर ध्वनित होती है तो गीत बन जाती है। इसीलिए गीत ऋषि स्व. नीरज जी कहते हैं कि गीत की आयु उतनी ही है

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 40

नवगीत पारंपरिक गीत में आया नवाचार ही था। काव्य की दृष्टि से उसमें सामाजिक विषमता, जीवन मूल्यों की टूटन, समाज में बढ़ती विषमता, मानवीय चरित्र के पतन, प्रकृति के अंधाधुंध दोहन, खुरदरे यथार्थ की घुटन, न जीने लायक परिस्थितियों में जीने की विवशता और मानवीय यातनाओं का बिबात्मक चित्रण जैसी संवेदनाएँ आई। नवगीतकार ने कृष्ण कथा के विभिन्न प्रतीकों यथा– कृष्ण, गीता, यमुना, द्रोपदी, वृंदावन, द्वारका, गोवर्धन आदि को भी प्रतीक रूप में खूब प्रयोग किया है।

जितनी आयु काल की है। जिंदगी गीता है और साँस लय है और हर आँसू एक स्वर है।[1]

इसी आदि विधा गीत में हिंदी के छायावाद काल में कुछ परिवर्तन की आहट सुनाई पड़ने लगी। गीत में नवाचार की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। ये नवाचार कथ्य के क्षेत्र में भी दिखे और शिल्प तथा भाषा के क्षेत्र में भी, परंतु यह परिवर्तन 1950 के आसपास स्पष्ट परिलक्षित होने लगा। इस परिवर्तन को छठवें व सातवें दशक में विभिन्न नामों से अभिहित किया गया। किसी ने इस नये गीत को 'नया गीत' किसी ने 'अगीत' किसी ने 'एंटी गीत', किसी ने 'नई कविता के गीत' और किसी ने इसे 'सहज गीत' कहना पसंद किया। परंतु अंतत:1958 में राजेंद्र प्रसाद सिंह ने 'गीतांगिनी' का प्रकाशन कर इस नये गीत का नामकरण नवगीत कर दिया और 1984 से 1986 तक डॉ. शंभूनाथ सिंह ने नवगीत दशक त्रयी तथा 'नवगीत अर्द्धशती' प्रकाशित कर इस नवगीत आंदोलन को व्यवस्थित व संगठित रूप प्रदान कर दिया।

नवगीत कोई आकाश से टपकी हुई विधा नहीं थी। वह पारंपरिक गीत में आया नवाचार ही था। काव्य की दृष्टि से उसमें सामाजिक विषमता, जीवन मूल्यों की टूटन, समाज में बढ़ती विषमता, मानवीय चरित्र के पतन, प्रकृति के अंधाधुंध दोहन, खुरदरे यथार्थ की घुटन, न जीने लायक परिस्थितियों में जीने की विवशता और मानवीय यातनाओं का बिंबात्मक चित्रण जैसी संवेदनाएँ आई। 'गीत' 'आत्मपीड़ा' का गायन था, नवगीत सबकी पीड़ा का गायन बना। शिल्प के स्तर पर खुरदरी व प्रयोग में रहने वाली भाषा, वक्रोक्ति विधान, बिंबधर्मी चित्रण, सार्थक व अर्थगर्भी नूतन प्रतीक योजना तथा मिथकों का आधुनिक जीवन की अभिव्यक्ति के अनुकूल प्रयोग आदि तत्त्व आए। कृष्ण कथा के विभिन्न प्रतीकों यथा— कृष्ण, राधा, गीता, यमुना, मधुवन, द्रोपदी, देवकी, वृंदावन, द्वारका, कुंज-निकुंज, भागवत, गोवर्धन आदि को भी प्रतीक रूप में नवगीतकारों ने खूब प्रयोग किया है। यह प्रयोग तीन स्तरों पर हुआ है—

1. कुछ नवगीतों में कृष्ण कथा के प्रतीकों का प्रयोग कर समाज को सकारात्मक और प्रेरक संदेश दिया गया है।

2. कुछ नवगीतों में कृष्ण कथा के विभिन्न तत्त्वों का प्रतीकीय प्रयोग करके उनका रूप बदलकर उनके द्वारा युगीन यथार्थ की अभिव्यक्ति की गयी है।

3. कुछ नवगीतों में सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रकार के संकेत प्रतीकों द्वारा उभारे गए हैं। हम तीनों स्वरूपों का क्रमश: चिंतन करते हैं।

सकारात्मक प्रतीक प्रयोग

स्व. महेश अनघ अत्यंत प्रतिभाशाली नवगीतकार है, उन्होंने अपने एक नवगीत में वृंदावन और वंशी

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 41

का प्रयोग युग जीवन के जटिल यथार्थ के विरुद्ध एक सार्थक तत्त्व के रूप में किया है। संसार में हिंसा व्याप्त है। राजनीतिज्ञों और देशों के कूटनीतिज्ञों ने हिंसा का परिवेश बना दिया है। सारा संसार आतंकवाद और हिंसा की जघन्यता से पीड़ित है। सीरिया, भारत, अमेरिका, अरब देश कोई तो इस आतंकवाद के दैत्य की गिरफ्त से नहीं बचा। महेश 'अनघ' वृंदावन को प्रेम और वंशी को हिंसा के विरुद्ध कला के अस्त्र के रूप में प्रयोग करते हुए कहते हैं—

आते हैं बारूदमुखी दोपाये हड़काना
लाना रे वृंदावन मेरी वंशी तो लाना। [2]

यहाँ वृंदावन और वंशी दोनों हिंसा के विरुद्ध प्रयुक्त होने वाले सार्थक अस्त्र के रूप में प्रतीक बनकर आए हैं। डॉ. यायावर ने भी राधा माधव और वृंदावन का प्रयोग इसी अर्थ में किया है। 'कैसे लड़ें बताओ काका जहरीले मौसम से अपने पास सिर्फ राधा-माधव हैं/ वृंदावन है ''स्वाभाविक है महेश 'अनघ' वंशी और वृंदावन की सकारात्मक शक्ति के प्रति आश्वस्त है, परंतु डॉ. यायावर में उतनी गहरी आश्वस्ति नहीं है। वे हिंसा की चतुर्दिक व्याप्त विकरालता से व्यथित हैं, और निराश हैं और राधामाधव और वृंदावन को लेकर भी आश्वस्त नहीं है, परंतु एक अन्य गीत में डॉ. यायावर गीता को कर्म से विरत पुरुष को प्रेरित करने के सार्थक साधन के रूप में प्रयुक्त करते हैं यथा—

सहम असहम कर भी लड़ना पड़ता है सबको,
कौन बचा है गीता के आलोकित स्वर से सुनो युधिष्ठिर। [3]

वंशी, कृष्ण, राधा, गीता आदि कृष्ण कथा के ऐसे प्रतीक हैं जो नवगीतों में बहुतायत से प्रयुक्त हुए हैं और इनके माध्यम से जीवन में शांति-विश्वास, कला प्रेम और औदात्य के मूल्यों को प्रतीकित करने का प्रयास हुआ है। पंकज परिमल अपने एक नवगीत में कुंज, वंशी और वंशीरव का प्रयोग अपने व्यक्तित्व की सार्थकता के लिए प्रयुक्त करते हैं, देखें—

मैं दूर कहीं नीरव बन प्रांतर में
वंशी के रव-सा उगकर फैला हूँ। [4]

आजादी के बाद हमारा नैतिक जीवन पतन की ओर गया है। हमारे पास एक सार्थक जीवन दृष्टि थी। भारतीयता का ऐसा दिव्य आलोक था जिसके प्रकाश में हम कठिन से कठिन समय में भी दिग्भ्रमित नहीं हुए। हमारी आस्था बलवती थी। हमारी संस्कृति सर्व समावेशी और विश्वास 'कृष्णवंतो विश्वमार्यम्' का था। हम 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामया' के गायक थे और अखिल ब्रह्मांड में शांति की अभिलाषा रखते थे। अपनी इसी आस्था और विश्वास के बल पर हम भारतीयता की रक्षा कर सके और कठिन से कठिन समय में भी स्थिर बने रहे। अमरनाथ श्रीवास्तव गोवर्धन के प्रतीक से आस्था के इसी अपराजित संसाधन का उल्लेख एक नवगीत में

आजादी के बाद हमारा नैतिक जीवन पतन की ओर गया है। हमारे पास एक सार्थक जीवन दृष्टि थी। भारतीयता का ऐसा दिव्य आलोक था जिसके प्रकाश में हम कठिन से कठिन समय में भी दिग्भ्रमित नहीं हुए। हमारी आस्था बलवती थी। हमारी संस्कृति सर्व समावेशी और विश्वास 'कृष्णवंतो विश्वमार्यम्' का था। हम 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामया' के गायक थे और अखिल ब्रह्मांड में शांति की अभिलाषा रखते थे। अपनी इसी आस्था और विश्वास के बल पर हम भारतीयता की रक्षा कर सके और कठिन से कठिन समय में भी स्थिर बने रहे।

करते हैं—

धरती पर बादल टूट गिरे
जल प्लावन में भी सृष्टि बची
कोई गोवर्धन था ऐसा
जिससे यह जीवन दृष्टि बची। [5]

कृष्ण युगद्रष्टा, क्रांतिकारी और ज्वलंत पुरुष हैं, उन्होंने गीता में अर्जुन को आश्वस्त किया है कि 'यदा-यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति' तब-तब' परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय व दुष्कृताम'' मैं अवतार लूँगा। नवगीतकार ब्रजनाथ श्रीवास्तव गीता में कृष्ण द्वारा दिए इसी आश्वासन पर विश्वास कर समकालीन जीवन की दुर्दांत विसंगतियों, मारक यथार्थ और बिडंबनाओं को ध्वस्त करने के लिए कृष्ण का आह्वान करते हैं—

''सुनो कान्हा। धर अधर पर बाँसुरी को
धुन नई कोई निकालो।
चक्रवत चलते समय के
द्वापरी दिन फिर भगाओ
मुक्ति की उस बाँसुरी से
गीत गीत फिर सुनाओ
सुनो कान्हा/हाथ में धारो सुदर्शन
देश अब तुम ही संभालो।'' [6]

इसी तरह का कृष्ण का आह्वान बृजनाथ श्रीवास्तव ने एक अन्य नवगीत में भी किया है। आज देश जिन समस्याओं से ग्रस्त है, बढ़ते बलात्कार, आर्थिक विषमता, भाई-भाई में वैर, पर्यावरण प्रदूषण, नदियों की सफाई के नाम पर हुई लूट आदि सब समस्याओं के समाधानार्थ वे कृष्ण का ही मार्मिक स्वर में आह्वान करते हैं—

''वासुदेव जी ।
जल्दी आओ
गंगा, यमुना और गोमती
सब की देह हुई मैली

सब की रक्षा के नाटक में
लूटें थैली पर थैली
जल्दी आओ
प्राण समय में फँसे हुए हैं
आयी फिर आफत वासुदेव जी जल्दी आओ। [7]

वस्तुत: कितना ही कठिन समय हो परंतु नवगीतकारों का मन पूरी तरह टूटा नहीं है। कृष्ण के प्रति उनमें आस्था अभी शेष है। उन्हें विश्वास है समय की इस दुर्दांतता, दानवी विकरालता और जटिलता को केवल कृष्ण ही ठीक कर सकते हैं। और बाँसुरी, वृंदावन, भक्ति, प्रेम, गोवर्धन और यमुना आज भी हमारे अवचेतन और चेतन में एक आश्वस्ति रचते हैं और हमारे सिर पर अभय का हाथ रखते हैं, मानों कृष्ण आज भी कहीं उनके अंतर्मन में अभयमुद्रा में खड़े आश्वस्त कर रहे हैं यह कहते हुए कि 'चिंता मत करो मैं हूँ।''

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 43

यथार्थबोधी प्रयोग

कृष्ण से संबंधित पात्रों स्थलों और घटनाओं के प्रतीक के रूप में प्रयोग का दूसरा आयाम नवगीतों में यथार्थबोधी रूप में होना है। इसमें कभी पात्र के मूल चरित्र का विलोम रचकर समकालीन यथार्थ का बोध कराया गया है और कभी घटनाओं के स्वरूप को बदलकर भी यथार्थ की भयावहता को स्वर दिया गया है। उदाहरण के लिए आज के समय में आम आदमी त्रस्त है। जीवन में कठिनाईयाँ हैं। परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि वह लड़ भी नहीं पा रहा और अपने को ठगा और हारा हुआ भी अनुभव कर रहा है। इस जटिल यथार्थ को प्रकट करने के लिए देवेंद्र शर्मा 'इंद्र' कहते हैं—

''कुरुक्षेत्र में लड़े बिना।
हारे हम जीवन संग्राम
कुंठित है चक्र सुदर्शन
कृष्ण नहीं कुछ आए काम।''[8]

इसी गीतांश में महाभारत को जीवन-संग्राम का प्रतीक बनाया गया है। आम आदमी अर्जुन है परंतु कृष्ण और चक्र सुदर्शन दोनों की असमर्थता बताकर आज के जीवन की जटिल और भयावह स्थितियों को स्वर दिया गया है।

किसी-किसी नवगीत में ऐसा भी है कि पात्र के चरित्र और स्वरूप को बिना बदले भी यथार्थ की भयावहता चित्रित की गयी है यथा एक नवगीत में बृजनाथ श्रीवास्तव द्वारा यमुना का मानवीकरण करते हुए आज के विसंगतिपूर्ण यथार्थ-अर्थात् शुभ और सत्य की स्थापना के लिए संघर्षरत लोगों को पराजित और असत् पक्ष को विजयी देखकर यमुना को रोता दिखाकर यथार्थ की भयंकरता को प्रकट किया गया है। वह इस युद्ध के विपरीत परिणाम पर रोती है।

''युद्ध हुए छल-कपटी सारे/जमुना जी तब रोई/धीरे-धीरे सूर्यसुता ने अपनी आभा खोई/और अभी तक पड़ी रो रही/ आज हस्तिनापुर में''[9] कृष्ण के जीवन में राधा का विशेष महत्त्व है। राधा ब्रज में कृष्ण की आह्लादिनी आद्यशक्ति मान्य हैं। वे कृष्ण की भी शासिका हैं। वे प्रेम का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक हैं। अनूप 'अशेष' ने अपने एक नवगीत में राधा के चरित्र को नहीं बदला है। कृष्ण उनको अपने जीवन की निरर्थकता बताते हैं। कृष्ण ब्रज में रहे तो पूरी तरह प्रेम में डूबाकर राधा के होकर रहे परंतु शेष जीवन मथुरा, द्वारका या हस्तिनापुर में उन्हें युद्धों में ही बिताना पड़ा। इसमें पात्रों में कृष्ण और राधा के स्वरूप को बिना बदले बड़ी कुशलता से कवि ने आज के जीवन की जटिलता को प्रकट कर दिया है यथा।

''राधिके यह युद्ध तुम में ही लड़ा
पर क्या मिला एक सोई भीड़
घायल तीर
टूटे रथ/
छाती पर शिला''

व्यास यहाँ महाभारत युगीन परिस्थितियों को ही आज के युग में घटित होता देख रहे हैं। वे सशंक्ति है कि फिर किसी नए महाभारत की विभीषका इस युग को न झेलनी पड़े। आज के युग की जटिल व बीभत्स परिस्थितियों, स्वार्थ लिप्साओं और मानवीय चरित्र के अधःपतन के लिए 'रामायण' की अपेक्षा 'महाभारत' अधिक सार्थक व प्रांसगिक प्रतीक है। हम महाभारत घटित होता देखने को अभिशप्त हैं, हर जेनुइन और युगचेता बुद्धिजीवी अभिशप्त है, रामायण की केवल 'कामना' या संभावना की जा सकती है।

बाँसुरी की धुन
तुम्हारे पास थी या खो गयी थी
युद्ध में तो शंख थे
तूणीर थे। बिखरी गदाएँ
मन कहाँ था? पार्थ में
यमुना किनारे तुमको क्या बताएँ
द्वारिका भोगे सुना भी
स्वर्ग के सोपान में क्रोधित बहेलिया
पिजरों में मोर, तीतल, सुआ पाले
राधिके अब कहाँ गोकुल
कहाँ बरसाना/यादें है भीगी हथेली
कंस-सी/देती हिला। [10]

स्पष्ट है कृष्ण का चरित्र यहाँ बदला नहीं गया परंतु उन्होंने प्रेम की सार्थकता और युद्ध की निरर्थकता को अपनी अनुभूति बताया है और युद्ध और शांति के द्वंद्व में शांति और प्रेम को ही महत्त्व दिया है। आज भले ही लड़ना हमारी नियति हो गयी हो। परंतु युद्ध कभी संतोष और शांति नहीं देता।

इसी तरह कृष्ण तथा उनके जीवन के प्राकृतिक और मानवीय पात्रों के प्रतीकात्मक प्रयोग से नवगीतों ने यथार्थ का बोध कराया है। कहीं-कहीं कुछ ऐसे पात्र भी उठाए गए हैं जिनका स्रोत कृष्ण के जीवन को चित्रित करने वाला सर्वोत्तम ग्रंथ श्रीमद्भागवत है। भागवत के रचनाकार व्यास हैं। कृष्ण और व्यास दोनों समकालीन हैं, व्यास भागवत के रचनाकार भी हैं परंतु ये दोनों ही महापुरुष अपने जीवन काल में अपने सर्वोत्तम प्रयत्नों के बावजूद महाभारत का युद्ध नहीं रोक पाए। व्यास ने महाभारत में स्पष्ट कहा है कि मैं भुजा उठाकर कहता हूँ कि अब मेरी कोई नहीं सुनता और सब विपथगामी हो गए हैं। जीवन के अंतिम दिनों में कृष्ण को भी अपनों द्वारा अपने ऊपर लगाये गये लांछन (स्यमंतक मणि की चोरी), यादवों की आपसी अंतर्कलह तथा युवा पीढ़ी की उदडंता का विवश साक्षी होना पड़ा था। व्यास की इस विवशता के माध्यम से नवगीतकार संजय शुक्ल ने आज के जीवन में खुरदरे व बीभत्स यथार्थ को स्वर दिया है देखें—

ऊर्ध्व में दोनों उठाकर बाँह कंपित
रो रहे हैं कृष्ण द्वैपायन सशंकित
किंतु सुनने को नहीं तैयार कोई
काल लिखता जा रहा ऐसा कथानक
अंत होता है सदा जिसका भयानक
ले धरा पर ईश फिर अवतार कोई ॥ [11]

स्पष्ट है कि व्यास यहाँ महाभारत युगीन परिस्थितियों को ही आज के युग में घटित होता देख रहे हैं। वे सशंक्ति हैं कि फिर किसी नए महाभारत की विभीषका इस युग को न झेलनी पड़े। आज के युग की जटिल व बीभत्स परिस्थितियों, स्वार्थ लिप्साओं और मानवीय चरित्र के अधःपतन के लिए 'रामायण' की अपेक्षा 'महाभारत' अधिक सार्थक व प्रांसगिक प्रतीक है। हम महाभारत घटित होता देखने को अभिशप्त हैं, हर जेनुइन और युगचेता बुद्धिजीवी

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 45

अभिशप्त है, रामायण की केवल 'कामना' या संभावना की जा सकती है। महाभारत प्रत्यक्ष है।

मिश्रित प्रतीकात्मकता

कृष्ण कथा के पात्रों व स्थलों या घटनाओं को नवगीतकारों ने कहीं-कहीं मिश्रित यथार्थ अर्थात् सकारात्मक व नकारात्मक दोनों रूपों में भी प्रयुक्त किया है। उदाहरणार्थ आज अंधाधुंध हुए महानगरीकरण ने गाँवों को उजाड़ा है। प्रकृति का अंधाधुंध दोहन करके प्रकृति का संतुलन बिगाड़ दिया है। वन निर्ममता से काटे गये हैं। नदियों में कारखानों और शहरों का अपशिष्ट व गंदे नाले डालकर उन्हें बुरी तरह प्रदूषित किया गया है। इस तथ्य को अमरनाथ श्रीवास्तव ने द्वारकापुरी को महानगर और यमुना, मथुरा व शाम को भावुकता, प्रेम, शुद्ध पर्यावरण और प्राकृतिक जीवन का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया है।

''महानगर-द्वारकापुरी पर
तुमको पूरा हक है,
लेकिन
जमुना-तट पर बैठी मथुरा की
यह शाम छोड़ते जाओ। [12]

स्पष्ट है कि यह कृष्ण कथा के नगरों द्वारकापुरी के माध्यम से नकारात्मक यथार्थ बोधी संकेत उभारा गया है और यमुना तथा मथुरा के माध्यम से सकारात्मक संकेत दिया गया है।

वस्तुतः नवगीत समकालीन जीवन का यथार्थपरक रागरंजित, अनुभूति संपन्न, लय प्रधान, छंदोबद्ध और सांस्कृतिक दृष्टि संपन्न गीत है। वह पारंपरिक गीत का नवाचार है। उनमें पुरानी नीवँ पर नया निर्माण है। उसने परंपरा को ध्वस्त करने की धूर्तता नहीं की अपितु परंपरा के सिरहाने चुपके से कुछ ऐसा नया रुख दिया कि वह नयी श्री और नूतन अर्थवत्ता से संपन्न हो गयी है। वहाँ कृष्ण और उनकी आभा को क्षीण किए बिना उन्हें युग यथार्थ की अभिव्यक्ति का प्रतीक बना लिया गया है।

लेखक प्रसिद्ध साहित्यकार व समालोचक हैं।

संदर्भ

1. नीरज रचनावली भाग 2, गोपालदास 'नीरज' आत्माराम एंड संस दिल्ली, 1994।
2. फिर माँडी राँगोली-महेश 'अनध', पृ. 151, निखिल पब्लिर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2008।
3. मेले में यायावर— डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर',पृ. 25, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल (हरियाणा) 2007।
4. उत्तम पुरुष का गीत, पंकज परिमल, पृ. 138, निहितार्थ प्रकाशन, साहिबाबाद, गाजियाबाद - 2013।
5. मैं न कहूँ तो, अमरनाथ श्रीवास्तव, पृ. 83, साहित्य भंडार, 50 चाहचंद, इलाहाबाद -2009।
6. योग क्षेम (प्रकाशनाधीन), बृजनाथ श्रीवास्तव।
7. हस्तिनापुर, बृजनाथ श्रीवास्तव, पृ. 125-126, ज्ञानोदय प्रकाशन, कानपुर-2018।
8. दिन पाटलिपुत्र हुए, देवेंद्र शर्मा 'इंद्र', पृ. 35, प्रीवण प्रकाशन, नई दिल्ली -1988।
9. हस्तिनापुर, बृजनाथ श्रीवास्तव, पृ. 126।
10. आदिम देहों के अरण्य में, अनूप अशेष, पृ. 81-82 आशु प्रकाशन, इलाहाबाद-02, 2009।
11. फटे पाँवों का महावर, संजय शुक्ल, पृ. 73, अनुभव प्रकाशन, साहिबाबाद, गाजियाबाद -5, 2016।
12. नवगीत दशक 2, संपादक- डॉ. शंभुनाथ सिंह, पृ 13, पराग प्रकाशन, दिल्ली-1993।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 46

भारत और भारतीयता के मूल में बहुभाषी चेतना को समझने के अर्थ में संवाद करने के लिए एक भाषा से दूसरी भाषा के बीच आवाजाही करने के अर्थ में बहुभाषिकता और बहुसांस्कृतिकता हमारी विरासत के रूप में बहुभाषिकता एक समाधान के रूप में। भारतीय संस्कृति बहुलतावादी है। इस बहुलतावादी संस्कृति की एक बड़ी विशेषता इसकी विविध भाषा है। विविध भाषाओं के बीच से जो तत्त्व प्रकाशित होता है– वही तत्त्व बहुभाषिकता है। बहुभाषिकता भारतीय संस्कृति का प्राण-तत्त्व है। मेल-जोल सद्भाव आदि से रहना हमारी मूल प्रेरणा है। बहुलार्थ तत्त्व हमारी सांस्कृतिक विरासत है। हमारा देश विविधताओं का देश है। बहुभाषिकता भारतीयता को बचाने में एक कारगर हथियार सिद्ध होगा। शिक्षा में बहुभाषिक पद्धति का निर्माण कर शिक्षा के सार्वभौमिक लक्ष्य तक पहुँचने में मदद करेगा।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 47

डॉ. अरुणाभ सौरभ

भारतीय संस्कृति और बहुभाषिकता की समझ

भारत और भारतीयता के मूल में बहुभाषी चेतना को समझने के अर्थ में संवाद करने के लिए एक भाषा से दूसरी भाषा के बीच आवाजाही करने के अर्थ में बहुभाषिकता और बहुसांस्कृतिकता हमारी विरासत के रूप में बहुभाषिकता एक समाधान के रूप में।

सारी तालीम विद्यार्थियों की क्षेत्रीय भाषा (मातृभाषा) द्वारा दी जानी चाहिए ।

–नयी तालीम (महात्मा गांधी)

शिक्षा में मातृभाषा शिशु के लिए माँ के दूध के समान है जबतक मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया जाता; तब तक शिक्षा का सार्वभौमीकरण संभव नहीं !

–रवींद्रनाथ टैगोर

भारतीय संस्कृति बहुलतावादी है। इस बहुलतावादी संस्कृति की एक बड़ी विशेषता इसकी विविध भाषा है। विविध भाषाओं के बीच से जो तत्त्व प्रकाशित होता है— वही तत्त्व बहुभाषिकता है। बहुभाषिकता भारतीय संस्कृति का प्राण-तत्त्व है। मेल-जोल सद्भाव आदि से रहना हमारी मूल प्रेरणा है। बहुलार्थ तत्त्व हमारी सांस्कृतिक विरासत है। हमारा देश विविधताओं का देश है। बहुभाषिकता भारतीयता को बचाने में एक कारगर हथियार सिद्ध होगा। शिक्षा में बहुभाषिक पद्धति का निर्माण कर शिक्षा के सार्वभौमिक लक्ष्य तक पहुँचने में मदद करेगा। एक-एक बच्चे की मातृभाषा से प्यार करते हुए राष्ट्रीय चेतना के साथ जोड़ना ही बहुभाषिकता की ओर ले जाता है। बहुभाषिकता का शिक्षा में प्रयोग प्राथमिक स्तर से होना चाहिए। सामान्यतया बहुभाषी का अर्थ ऐसे

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 48

व्यक्ति से है जो दो या अधिक भाषाओं का प्रयोग करता है। विश्व में बहुभाषी लोगों की संख्या एकभाषियों की तुलना में बहुत अधिक है। विद्वानों का मत है कि द्विभाषिकता किसी भी व्यक्ति के ज्ञान एवं व्यक्तित्व के विकास के लिए बहुत उपयोगी है। समझ को बनाने में भाषा अस्त्र है और बहुभाषिकता शस्त्र। हम मूलत: बहुभाषी हैं। भारत जैसे बहुभाषी देश में तो हमारा किसी एक भाषा के सहारे काम चल ही नहीं सकता। हमें अपनी बात बाकी लोगों तक पहुँचाने के लिए और उनके साथ संवाद करने के लिए एक भाषा से दूसरे भाषा के बीच आवाजाही करनी ही पड़ती है। जैसे हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं का मिश्रित रूप है हिंदुस्तानी बोली। समाज यदि भाषा की निर्मिति में निर्णायक होता है तो भाषा भी समाज की निर्मिति में उतना ही सहायक होती है। स्वस्थ एवं सभ्य नागरिक का निर्माण भाषा के बगैर असंभव है। भाषा व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण ही नहीं करती अपितु उसे संस्कारवान भी बनाती है. व्यक्ति की समग्र प्रगति में निर्णायक तत्त्व भाषा ही होती है। भारत का समाज बहुभाषी है तो यहाँ व्यक्तित्व का निर्माण भी बहुभाषी ही होगा। बहुत से बच्चों की घर की भाषा (होम लैंग्वेज) स्कूल की भाषा से इतर होती है। बहुभाषिकता घर और स्कूल की भाषा में आई दूरी को पाटता है। भारत और भारतीयता के मूल में छिपी हुई बहुभाषी चेतना को अर्थ देता है। सस्कृति का भाषा के साथ अभिन्न संबंध है, अगर भाषा संरक्षित रहेगी तो संस्कृति अपने आप बची रहेगी ' भाषा संस्कृति के निर्माण में सहायक होती है, भाषा द्वारा हम अपनी संस्कृति व्यक्त करते हैं, भाषा स्वयं भी संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है...संस्कृति सामाजिक और प्राकृतिक परिवेश पर विजय पाने का एक साधन है। उसमें मनुष्य के भाव, विचार, संस्कार, संवेदनाएँ सभी शामिल हैं. भाषा भी ऐसी ही संस्कृति है।[1]

एक-एक बच्चे की मातृभाषा से प्यार करते हुए राष्ट्रीय चेतना के साथ जोड़ना ही बहुभाषिकता की ओर ले जाता है। बहुभाषिकता का शिक्षा में प्रयोग प्राथमिक स्तर से होना चाहिए। सामान्यतया बहुभाषी का अर्थ ऐसे व्यक्ति से है जो दो या अधिक भाषाओं का प्रयोग करता है। विश्व में बहुभाषी लोगों की संख्या एकभाषियों की तुलना में बहुत अधिक है। विद्वानों का मत है कि द्विभाषिकता किसी भी व्यक्ति के ज्ञान एवं व्यक्तित्व के विकास के लिए बहुत उपयोगी है। समझ को बनाने में भाषा अस्त्र है और बहुभाषिकता शस्त्र। हम मूलतः बहुभाषी हैं।

इस संदर्भ में ब्रिटिश कौंसिल का दस्तावेज कहता है—

India is a country with linguistic diversity that befits a continent. There is in place a three language formula for school education. However, in practice teachers are often faced with immense difficulty dealing with the challenges this diversity poses in everyday classroom situations. How do teachers deal with a multilingual class that does not match with his or her own language(s)? How does one transition student who speaks a tribal or a highly localised language to the provincial language and then on to Hindi, the national language? And where does English sit within all of this, when is it right to introduce this and how? [2]

बहुभाषिकता से जुड़ने का अर्थ भारत की आत्मा से जुड़ना है। आजादी के बाद संविधान ही हमारा सबसे बड़ा ग्रंथ है, संविधान में बहुभाषिकता का पूरा ख्याल किया गया है। आठवीं अनुसूची भाषा पर ही है। आठवीं अनुसूची में 22 भाषाएँ शामिल की गईं हैं। त्रिभाषा सूत्र संविधान में नहीं है। 1956 में अखिल भारतीय शिक्षा परिषद् ने इसे मूल रूप में संस्तुति के रूप में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में रखा

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 49

था। 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने इसका अनुमोदन किया। बच्चे प्रारंभ से ही बहुभाषिक शिक्षा प्राप्त करें। त्रिभाषा फर्मूला को उसके मूल भाव के साथ लागू किये जाने की जरूरत है। ताकि बहुभाषी देश में बहुभाषी संवाद को बढ़ावा मिले।

प्रख्यात भाषा वैज्ञानिक रमाकांत अग्निहोत्री लिखते हैं—

'होबार्ट 'द टयूटर', जो कि अँग्रेजी सिखाने के लिए तैयार की गई पहली प्रवेशिका थी, के बारे में बताते हैं। इसका प्रकाशन 1779 ई. में बंगाल के सीरामपुर में हुआ था। यह मुख्यत: सहज एवं मनोरंजक दैनिक कार्य-कलापों से संबंधित द्विभाषी वार्तालाप (संवाद) पर आधारित था, जिसमें पुराने तथा अलंकृत शब्दों की जगह साधारण बोलचाल वाले शब्दों का इस्तेमाल किया गया था। बहुत-से कारक थे जिन्होंने मिलकर विविधता को दरकिनार करते हुए एकभाषिता को स्वीकृत मानक बना दिया, और 'एकदम-सही के प्रति अस्वाभाविक लगाव' सब तरफ चलन में आ गया। देशी भाषाओं को 'वर्नेक्यूलर,' जो केवल घरों एवं गौण परिवेश में बोलचाल के लिए ही उपयुक्त हैं, कहकर उनको हेय करार देना ब्रिटिश सरकार के हित में था। वे पारंपरिक एवं सांस्कृतिक तथ्य व जानकारियाँ, जो इन भाषाओं द्वारा व्यक्त की जाती थी, उन्हें भी गलत ठहरा दिया जाता था। उदाहरण के लिए, भारत के परिप्रेक्ष्य में, मैकॉले[4] के विचार थे कि अरबी एवं संस्कृत जैसी सांस्कृतिक भाषाओं को दी जाने वाली प्रशासनिक एवं वित्तीय सुविधाएँ समाप्त कर दी जाएँ तथा अँग्रेजी साहित्य एवं इतिहास को अनिवार्य विषय बनाने के साथ ही शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी कर दिया जाए। मैकॉले का विचार था कि ऐसा करना 'प्रशासन' एवं 'भारतीय जनता' दोनों के हित में होगा। परंतु, वास्तव में वह इस माध्यम से भारतीय जनता के बीच एक ऐसा वर्ग तैयार करना चाहता था, जो लहू एवं रंग से तो भारतीय हो, परंतु पसंद, विचार, बुद्धि एवं नैतिकता से ब्रिटिश हो। उसका मानना था कि 'वर्नेक्यूलर' भाषाओं का हित भी इन अँग्रेजी दाँ भारतीयों द्वारा अच्छे से निभाया जा सकेगा।[3]

देशी भाषाओं को 'वर्नेक्यूलर,' जो केवल घरों एवं गौण परिवेश में बोलचाल के लिए ही उपयुक्त हैं, कहकर उनको हेय करार देना ब्रिटिश सरकार के हित में था। वे पारंपरिक एवं सांस्कृतिक तथ्य व जानकारियाँ, जो इन भाषाओं द्वारा व्यक्त की जाती थी, उन्हें भी गलत ठहरा दिया जाता था। उदाहरण के लिए, भारत के परिप्रेक्ष्य में, मैकॉले के विचार थे कि अरबी एवं संस्कृत जैसी सांस्कृतिक भाषाओं को दी जाने वाली प्रशासनिक एवं वित्तीय सुविधाएँ समाप्त कर दी जाएँ तथा अँग्रेजी साहित्य एवं इतिहास को अनिवार्य विषय बनाने के साथ ही शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी कर दिया जाए।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में निरंतर नवाचार और नए तकनीकों का उपयोग हो रहा है। तेजी से बदलती दुनिया में हम तकनीक को, नवाचार को दरकिनार नहीं कर सकते। तकनीक के सकारात्मक उपयोग की ओर ले जाना हमारा कर्तव्य होना चाहिए। बहुभाषिकता को एक शैक्षणिक तकनीक की तरह उपयोग करने की जरूरत है। भाषा सीखना किसी एक तकनीक, एक नियम और एक शर्त से संभव नहीं है। भाषा शिक्षण निरंतर चलनेवाली गतिमान प्रक्रिया है, जो देश, काल, पात्र और परिस्थिति के अनुरूप ही संभव है। भाषा सीखने का संबंध अंतत: सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखने से

है। विद्यार्थियों की भाषाई दक्षता के विकास हेतु भी उनकी मातृभाषा का सम्मान करते हुए भी एकरेखीय और एकभाषीय शिक्षण घातक है, इसकी जगह पर बहुभाषिक शिक्षण पद्धति की जरुरत है। इसीलिए अब राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 हो या राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 की ड्राफ्ट बहुभाषिकता का महत्त्व हर जगह रेखांकित किया गया है।

एन सी एफ 2005 में लिखा है -

''बहुभाषिकता जो बच्चों की अस्मिता का निर्माण करती है और जो भारत के भाषा परिदृश्य का विशिष्ट लक्षण है उसका संसाधन के रूप में उपयोग कक्षा की कार्य नीति का हिस्सा बनाना तथा उससे लक्ष्य के रूप में रखना रचनात्मक भाषा शिक्षक का कार्य है। यह केवल उपलब्ध संसाधन का बेहतर इस्तेमाल नहीं है बल्कि इसे यह भी सुनिश्चित हो सकता है कि बच्चा स्वीकार्य और संरक्षित महसूस करे और भाषिक पृष्ठभूमि के आधार पर किसी को पीछे ना छोड़ा जाए।[4]

भारतीय भाषाओं का आधार-पत्र फोकस समूह एन सी एफ-2005 में इस संदर्भ में लिखा है—

''मातृभाषा में शिक्षा से कक्षा में पढ़ाई को समृद्ध करने में सुविधा होगी, शिक्षार्थियों की अधिकाधिक प्रतिभागिता होगी और बेहतर परिणाम निकलेंगे। इस उद्देश्य के लिए पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जाएँ। सभी में मातृभाषा में शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण सुनिश्चित किया जाए ताकि शिक्षार्थी वह माध्यम अपनाने में संकोच ना करें जिसमें वह आसानी से समझ सके।''[5]

भारतीय भाषाओं का आधार-पत्र फोकस समूह के दस्तावेज के सार-संक्षेप में स्पष्ट है—

''बच्चे को मातृभाषा में ही शिक्षा प्रदान की जाए और शिक्षकों को कक्षा में बहुभाषी वातावरण का महत्तम उपयोग कर सकने की क्षमता प्रदान की जाए। हाल ही में अध्ययन शोधों से बहुभाषिक भाषा-क्षमता व शैक्षिक संप्राप्ति में भी सकारात्मक संबंध का पता चला है। साथ ही यह भी पता चला है कि बहुभाषिकता ज्यादा संज्ञानात्मक लचीलेपन एवं सामाजिक सहिष्णुता को जन्म देती है।''[6]

''बच्चे को मातृभाषा में ही शिक्षा प्रदान की जाए और शिक्षकों को कक्षा में बहुभाषी वातावरण का महत्तम उपयोग कर सकने की क्षमता प्रदान की जाए। हाल ही में अध्ययन शोधों से बहुभाषिक भाषा-क्षमता व शैक्षिक संप्राप्ति में भी सकारात्मक संबंध का पता चला है। साथ ही यह भी पता चला है कि बहुभाषिकता ज्यादा संज्ञानात्मक लचीलेपन एवं सामाजिक सहिष्णुता को जन्म देती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 के ड्राफ्ट में भी इस पर प्रकाश डाला गया है—

''बच्चों में भाषा को सीखने की बेहद क्षमता होती है, यह भी सही है कि हमें अँग्रेजी की इस सत्ता को रोककर अभिजात वर्ग और बाकी के समाज में जो खाई बन गई उसे पाटने की जरूरत है लेकिन इसके अतिरिक्त हमें भारतीय भाषाओं के शिक्षण के साथ-साथ अँग्रेजी का भी सभी सरकारी और गैर सरकारी स्कूलों में बढ़िया क्वालिटी का शिक्षण करना चाहिए।''[7]

शिक्षा का प्रमुख काम ही समझ का निर्माण करना है। समझ बनी, विचार विकसित हुए और आप ज्ञान की मुख्यधारा में सीधे प्रवेश कर गए। समझना और बूझना यानी समझ-बूझ ही शिक्षा से प्राप्त मूल चीज है। समझ को बनाने की प्रक्रिया ज्ञानी होने के लिए आवश्यक है। जानने के लिए समझना जरूरी है।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 51

अपनी ज्ञानेंद्रियों के द्वारा जो हम बाहरी दुनिया को जानने और समझने की कोशिश करते हैं, उसे संज्ञान कहते हैं। मोटे तौर पर संज्ञान का अर्थ है जानना। संज्ञान को महत्त्व देने वाले मनोवैज्ञानिकों ने संज्ञानवादी समूह बनाया था। मनोविज्ञान में संज्ञान का बड़ा महत्त्व है। संज्ञानात्मक शब्द का अँग्रेजी रूपांतरण है 'कॉगनेटिव'। जीनपियाजे ने संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इसके अनुसार सीखना उस समय ज्यादा अर्थपूर्ण होता है जब वह विद्यार्थी की रुचि और जिज्ञासा के अनुरूप हो। जीनपियाजे मानते हैं संज्ञानात्मक विकास अनुकरण की बजाय खोज पर आधारित है। इसमें व्यक्ति अपनी ज्ञानेंद्रियों के प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर अपनी समझ का निर्माण करता है।

शिक्षा का प्रमुख काम ही समझ का निर्माण करना है। समझ बनी, विचार विकसित हुए और आप ज्ञान की मुख्यधारा में सीधे प्रवेश कर गए। समझना और बूझना यानी समझ-बूझ ही शिक्षा से प्राप्त मूल चीज समझ को बनाने की प्रक्रिया ज्ञानी होने के लिए आवश्यक है। जानने के लिए समझना जरूरी है। अपनी ज्ञानेंद्रियों के द्वारा जो हम बाहरी दुनिया को जानने और समझने की कोशिश करते हैं, उसे संज्ञान कहते हैं। मोटे तौर पर संज्ञान का अर्थ है जानना।

रमाकांत अग्निहोत्री लिखते हैं–

''आज के परिदृश्य में, बहुभाषावाद ऐसी स्वाभाविक घटना मानी जाने लगी है जिसका सकारात्मक संबंध विवेकपूर्ण आचरण (संज्ञानात्मक व्यवहार) एवं विद्यालयों में प्राप्त सफलता से है। फिर भी, इसमें छिपी अपार संभावनाओं का कक्षाओं में पूरी तरह से इस्तेमाल नहीं हो पाया है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि भाषा शोध बहुभाषावाद के महत्त्व को उजागर करती है। फिर भी, कक्षाओं में, खासकर भाषा की कक्षाओं में एकभाषावाद का प्रचलन अधिक देखने को मिलता है। बच्चे जो भाषा घर एवं अपने परिवेश में इस्तेमाल करते हैं, वे विद्यालयों में उपेक्षित हैं एवं उनका प्रयोग विद्यालयों में हेय दृष्टि से देखा जाता है।''[8]

बहुभाषावाद आज एक चुनौती है। यद्यपि मातृभाषा से लोगों का स्वाभाविक लगाव होता है। यही वजह रही कि बांग्लादेश और पाकिस्तान भाषा के नाम पर बँट गए। जबकि दोनों जगह एक ही धर्म के लोग बहुसंख्यक थे। इसके विपरीत भारत में अनेक धर्म और भाषाएँ हैं और हम संयुक्त हैं। यहाँ छोटी से छोटी भाषाओं का सम्मान आवश्यक है। विश्व में बहुभाषी विद्यार्थी अपवाद नहीं बल्कि आदर्श हैं। एक से अधिक भाषा ज्ञान के संज्ञानात्मक और व्यावहारिक लाभ के कई शोध और प्रमाण हैं। एक से अधिक भाषा का ज्ञान अध्यापन और शिक्षण का अद्‌भुत साधन है। ध्यान रहे हम प्रथमत: और अंतत: भाषा ही सीखते हैं। प्रत्येक शिक्षक चाहे किसी भी विषय के हों उन्हें अपने सभी विद्यार्थियों के भाषा ज्ञान और कौशल की प्रशंसा, प्रचार और उसे निखारने के अवसरों की तलाश करनी चाहिए। भाषा शिक्षक होने के नाते, ऐसा करना हमारी पहली जवाबदेही है और नैतिकता भी।

बहुभाषिकता के महत्त्व

- भाषा की कक्षाओं में एकभाषावाद के प्रचलन को तोड़ने के अर्थ में।
- बच्चे के घर एवं अपने परिवेश एवं विद्यालय की भाषा में सामंजस्य स्थापित करने में।
- अर्थपूर्ण और सृजनात्मक शिक्षा सामाजिक संघर्ष

की कुंजी के रूप में ।

- भाषा सभी प्रकार की शैक्षणिक क्रियाओं का केंद्र-बिंदु के रूप में।
- अधिकतम ज्ञान, भाषा के माध्यम से ही अर्जित करने के अर्थ में बहुभाषिकता।
- भाषा संरचनाएँ सामाजिक विविधताओं एवं भाषा गहनता से विचारों की संरचना तथा उनकी अभिव्यक्ति की सीमाएँ तय करने के अर्थ में।

सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक फेयरक्लॉग कहते हैं—

''...(ऐसे) भाषा शिक्षण जो बिना एक आलोचनात्मक रवैया अपनाए भाषा की निपुणता प्रदान करने पर केंद्रित होते हैं, वे प्रशिक्षु के प्रति अपना दायित्व पूरा नहीं कर रहे होते। प्रजातंत्र में जनता प्रभावकारी नागरिक नहीं बन पाएगी, यदि शिक्षा उनमें उनके भौतिक एवं सामाजिक परिवेश के मुख्य घटकों के प्रति आलोचनात्मक योग्यता का विकास नहीं करती। अगर हम चाहते हैं कि शिक्षा नागरिकता के लिए प्रभावी स्त्रोत उपलब्ध कराए, तो अपनी बोलचाल की भाषा के तौर-तरीकों के प्रति आलोचनात्मक सजगता अनिवार्य है।''

दसवीं कक्षा तक के बच्चों को भाषाई समझ इतनी होनी चाहिए कि पढ़ना, लिखना, बोलना, सुनना और सृजन में किसी तरह की कोई कठिनाई न हो।

- समझ को विकसित करने हेतु भाषा सबसे बड़ा अस्त्र है।
- भाषा और समझ का गहरा संबंध है।
- शिक्षा में समझ की जरूरत को विकसित करने की नीतियाँ एक रचनात्मक सोच का परिणाम है।
- संवेदनात्मक विकास हेतु समझ के विकास की जरुरत है।
- समझ विकसित होने से रचनात्मक्ता का विकास होगा।
- सीखने के प्रतिफल का वास्तविक लक्ष्य पूरा हो सकेगा।
- अधिगम प्रक्रिया पर सकारात्मक और संरचनात्मक और गहरा असर पड़ सकता है।

भाषाई समझ के विस्तार हेतु बहुभाषिक शिक्षण पद्धति की आवश्यकता है। इससे भाषाई कौशल का विकास तो होगा ही साथ ही साथ शिक्षार्थी की अपनी भाषा का आदर और सम्मान भी बढ़ा शिक्षा के मूल लक्ष्य तक पहुँचने में भी आसानी होगी। कक्षा में बहुभाषिकता का उपयोग भाषा-शिक्षण के लिए संसाधन तथा लक्ष्य, दोनों तौर पर किया जा सकता है। लेकिन इसका सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में मातृभाषा के उपयोग पर भी पड़ता है।

भाषाई समझ के विस्तार हेतु बहुभाषिक शिक्षण पद्धति की आवश्यकता है। इससे भाषाई कौशल का विकास तो होगा ही साथ ही साथ शिक्षार्थी की अपनी भाषा का आदर और सम्मान भी बढ़ जाएगा। शिक्षा के मूल लक्ष्य तक पहुँचने में भी आसानी होगी। कक्षा में बहुभाषिकता का उपयोग भाषा-शिक्षण के लिए संसाधन तथा लक्ष्य, दोनों तौर पर किया जा सकता है। लेकिन इसका सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में मातृभाषा के उपयोग पर भी पड़ता है। वह शिक्षक, जो बहुभाषावाद को समाज में एक संसाधन के रूप में देखता है, वह नि:संदेह रूप से, भाषा की कक्षा में, विभिन्न भाषाओं में छिपी सृजनात्मकता की संभावनाओं के दोहन का अधिकतम प्रयास करेगा। लक्षित भाषा के संदर्भ में, शुद्धता के साथ धाराप्रवाह वक्तव्य एवं सामाजिक

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 53

व्यवहार में विशिष्ट कुशलता की प्राप्ति के प्रयास भाषा शिक्षण के प्रमुख उद्देश्य नहीं रहेंगे।

एक बहुभाषी कक्षा में शिक्षकों से यह अपेक्षा की जाती है कि उनमें बच्चों के द्वारा बोली जाने वाली मातृभाषा के बारे में समझ और सम्मान की भावना का विकास करें, वे बच्चों द्वारा बोली जाने वाली उनकी अपनी भाषा को कक्षा में समानुभूति के साथ सीखने-सिखाने के लिए स्थान दें, अपनी कक्षा की विविधता को समझते हुए बच्चों के ज्ञान के विकास के लिए सहज और रचनात्मक वातावरण बनाने का प्रयास करें।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के पृ.सं 42 में गंभीरतापूर्वक इस पर विचार किया गया है—

''मातृभाषा में शिक्षा से कक्षा में पढ़ाई को समृद्ध करने में सुविधा होगी, शिक्षार्थियों की अधिकाधिक प्रतिभागिता होगी और बेहतर परिणाम निकलेंगे। इस उद्देश्य के लिए पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जाएँ। सभी में मातृभाषा में शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण सुनिश्चित किया जाए ताकि शिक्षार्थी वह माध्यम अपनाने में संकोच ना करें जिसमें वह आसानी से समझ सके।''

1. भाषा शिक्षण बहुभाषिक होना चाहिए। बहुभाषिक कक्षा को एक संसाधन के तौर पर प्रयुक्त करना चाहिए।
2. बच्चों की घरेलू भाषा(एं), स्कूल में शिक्षण का माध्यम होनी चहिए।
3. बच्चे प्रारंभ से ही बहुभाषिक शिक्षा प्राप्त करें। त्रिभाषाफर्मूला को उसके मूलभाव के साथ लागू किए जाने की जरूरत है। ताकि वह बहुभाषी संवाद के माहौल को बढ़ावा मिले।
4. गैर हिंदी भाषी राज्यों में बच्चे हिंदी सीखें तथा हिंदी प्रदेशों के बच्चे वह भाषा सीखें जो उस क्षेत्र में नहीं बोली जाती।
5. आधुनिकतम भारतीय भाषा के रूप में संस्कृत का अध्ययन भी शुरू किया जाना चाहिए।
6. बाद के स्तरों पर शास्त्रीय और विदेशी भाषाओं से परिचय करवाया जाना चाहिए।[9]

बच्चों की भाषा को कक्षा में सम्मान मिले, बच्चे बेहिचक किसी से अपनी बात कह सकें, अपनी बात को अपनी भाषा में कहने के समान अवसर का सहज वातावरण प्रदान निर्मित हो।

भारतीय भाषाओं का आधार-पत्र फोकस समूह एन सी एफ-2005 में इस बात को लेकर स्पष्ट रूप से लिखा गया है—

''मातृभाषा में शिक्षा से कक्षा में पढ़ाई को समृद्ध करने में सुविधा होगी, शिक्षार्थियों की अधिकाधिक प्रतिभागिता होगी और बेहतर परिणाम निकलेंगे। इस उद्देश्य के लिए पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जाएँ। सभी में मातृभाषा में शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण सुनिश्चित किया जाए ताकि शिक्षार्थी वह माध्यम अपनाने में संकोच ना करें जिसमें वह आसानी से समझ सके।''[10]

एक भाषा का विकास दूसरी भाषा के विकास में भी सहायक होता है।

एन.सी.एफ. 2005 में बहुभाषिकता

- एक सृजनशील भाषा-शिक्षक द्वारा बहुभाषावाद का उपयोग एक संसाधन के रूप में।
- कक्षा की शैक्षणिक योजना बनाने और लक्ष्य की प्राप्ति के लिए।
- एक सहज उपलब्ध साधन का श्रेष्ठ उपयोग करना।
- प्रत्येक बच्चा अपने को कक्षा में सुरक्षित और स्वीकृत महसूस करे।

- भाषाई पृष्ठभूमि के कारण कोई भी पिछड़ने न पाए।
- बच्चे प्रारंभ से ही बहुभाषिक शिक्षा प्राप्त करें।
- त्रिभाषाफर्मूला को उसके मूल भाव के साथ लागू किए जाने की जरूरत।
- बहुभाषी देश में बहुभाषी संवाद को बढ़ावा मिले।
- मातृभाषा को माध्यम भाषा बनाने पर बल।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 के ड्राफ्ट में बहुभाषिकता

- शिक्षा में बहुभाषिकता को प्राथमिकता के साथ शामिल करने और ऐसे भाषा शिक्षकों की उपलब्धता को महत्त्व।
- बच्चों के घर की भाषा समझते हों। यह समस्या राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राज्यों में दिखाई देना।
- पहली से पाँचवी तक जहाँ तक संभव हो मातृभाषा का इस्तेमाल शिक्षण के माध्यम के रूप में।
- घर और स्कूल की भाषा अलग-अलग है, वहाँ दो भाषाओं के इस्तेमाल का सुझाव।
- बहुभाषिकता को समस्या के बजाय समाधान के रूप में देखना। [11]

समझ को विकसित करने हेतु शिक्षण दोनों रूपों में संभव है—पहला मातृभाषा के रूप में शिक्षण, इसमें संज्ञानात्मक विकास के साथ-साथ बालकों में मातृभाषा का विकास हो सके। वैसे मातृभाषा में शिक्षा के लिए कोई अलग तकनीक तो होती नहीं, अपितु बालकों के बौद्धिक विकास, चिंतन और बोधन का आधार मातृभाषा बन सकती है और हमारी बहुभाषिक अवधारणा में मदद मिल सकती है। मातृभाषा के रूप में शिक्षण आवश्यक है ताकि इससे बच्चों को अपनी भाषा को लेकर कोई हीनताबोध ना हो और उसे समझने में आसानी हो। दूसरा माध्यम भाषा के रूप में जिसमें बच्चे ज्ञान के विविध क्षेत्रों को अपनी भाषा में समझ सकें।

समझ को विकसित करने हेतु शिक्षण दोनों रूपों में संभव है- पहला मातृभाषा के रूप में शिक्षण, इसमें संज्ञानात्मक विकास के साथ-साथ बालकों में मातृभाषा का विकास हो सके। वैसे मातृभाषा में शिक्षा के लिए कोई अलग तकनीक तो होती नहीं, अपितु बालकों के बौद्धिक विकास, चिंतन और बोधन का आधार मातृभाषा बन सकती है और हमारी बहुभाषिक अवधारणा में मदद मिल सकती है। मातृभाषा के रूप में शिक्षण आवश्यक है ताकि इससे बच्चों को अपनी भाषा को लेकर कोई हीनताबोध ना हो और उसे समझने में आसानी हो।

समझ को विकसित करने के तरीके

''समझ और भाषा का रिश्ता कुछ ऐसा होता है जैसे हवा और उसकी तरंगों का। हमारी समझ अपनी भाषा में ही बनती है। भाषा के बिना समझ की परिकल्पना असंभव है। पर स्कूलों में भाषा को एक 'टूल' की तरह इस्तेमाल किया जा रहा है। हमें इस दिशा में अभी काम करना होगा और यह विश्वास दिलाना होगा कि भाषा मानवीय समझ का एकमात्र आवश्यक आधार है। हम वर्तमान में क्या कर रहे हैं? इसके बारे में भी हमें भाषा ही सचेत करती है। यह वर्तमान से अतीत और भविष्य में आवाजाही करने का एकमात्र जरूरी उपकरण है। [12]

कहानियों को सुनकर और वे जो भाषा सुनते हैं, उसे दोहराकर। ऐसा करके वे भाषा के खंडों- अभिव्यक्ति, वाक्यांश और वाक्य को पढ़ते हैं और आत्मसात करते हैं।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 55

बारी-बारी से हर अक्षर और शब्द को पढ़कर इससे वे अच्छी तरह जान जाते हैं कि शब्द कैसे बनते हैं और हर शब्द का मतलब क्या होता है।

पृष्ठ पर लिखे शब्दों को पढ़ने और समझने में उनकी मदद करने के लिए चित्रों का उपयोग करें।

वास्तव में ज्यादातर छात्र इन सभी रणनीतियों के मिश्रण का उपयोग करते हैं।

मूक अभिनय के द्वारा प्रदर्शित संदेश को समझकर अभ्यास किया जाए।

पढ़ना प्रारंभ करने के लिए एक व्यावहारिक दृष्टिकोण एन.सी.एफ.2005 से

- कक्षा में संकेत चिह्नों, चार्टों और कार्यों की व्यवस्था संबंधी सूचनाओं आदि को प्रदर्शित करके मुद्रित-सामग्री से भरपूर वातावरण प्रदान किए जाने की जरूरत।
- अक्षरों तथा ध्वनियों के पारस्परिक संबंध को सिखाने के अलावा लिखित चिह्नों को अक्षरों की तरह पहचानने की प्रक्रिया को प्रोत्साहन।
- कक्षा की पढ़ाई में ऐसी कल्पनाशील सामग्री का समावेश किए जाने की जरूरत।
- किसी योग्य वाचक के द्वारा उपयुक्त भाव-भंगिमाओं सहित नाटकीय ढंग से पढ़ी जाए।
- बच्चों से उनके अनुभवों को लिखवाना और फिर लिखे गए विवरण को पढ़वाना।
- कहानियों, कविताओं आदि का वाचन।
- पहली पीढ़ी के स्कूल जाने वालों को स्वयं अपनी पाठ्यसामग्री निर्मित करने, अपनी पसंद से चुनी गई पाठ्यसामग्री को कक्षा में शामिल करने के अवसर देना। [10]

मातृभाषा हिन्दी शिक्षण पृष्ठ संख्या 4 एनसीईआरटी के 1998 के संस्करण में लिखा गया है कि-

''विश्व के सभी शिक्षा शास्त्री तथा भाषा वैज्ञानिक इस बात से सहमत है कि शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ माध्यम मातृभाषा ही हो सकती है। उनकी मान्यता है कि जितनी सरलता और स्वाभाविकता से मातृभाषा के माध्यम से बालक शिक्षा प्राप्त करता है किसी अन्य भाषा माध्यम से नहीं।''[13]

- विचार-विनिमय में माध्यम की भाषा के रूप में समझ विकसित करने की आवश्यकता है।
- प्रशिक्षण में भाषाई समझ के रूप को विकसित करने की आवश्यकता है।
- भाषाओं में समता के आधार पर समझ की एकात्मता विकसित करने की आवश्यकता है ।
- सर्जनात्मक संवाद और लोक ज्ञान परंपरा के विकास में निकटता के कारण हिंदी भाषियों को सरलता और सुगमता से कई-कई भाषाओं में प्रवेश कराने हेतु बहुभाषी शिक्षण आवश्यक है।
- माध्यमिक स्तर तक अनिवार्य पढ़ाई मातृभाषा के रूप में और माध्यम भाषा के रूप में कक्षा 1 से 8 तक के रूप में पढ़ाई की व्यवस्था से भाषा समझ के विकास में बल मिल सकता है।
- बुनियादी शिक्षा के रूप में प्राथमिक स्तर से माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर तक

''विश्व के सभी शिक्षा शास्त्री तथा भाषा वैज्ञानिक इस बात से सहमत है कि शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ माध्यम मातृभाषा ही हो सकती है। उनकी मान्यता है कि जितनी सरलता और स्वाभाविकता से मातृभाषा के माध्यम से बालक शिक्षा प्राप्त करता है किसी अन्य भाषा माध्यम से नहीं।'' माध्यमिक स्तर तक अनिवार्य पढ़ाई मातृभाषा के रूप में और माध्यम भाषा के रूप में कक्षा 1 से 8 तक के रूप में पढ़ाई की व्यवस्था से भाषा समझ के विकास में बल मिल सकता है।

मातृभाषा की पढ़ाई से न सिर्फ भाषाई विकास होगा अपितु समझ का विकास से एक भाषाई राष्ट्रीय एकता को बल मिलेगा।

गतिविधि

1 बूझो तो जाने

जगह और वस्तुओं के नाम लिए बिना उन्हें कैसे समझ कर बताया जा सकता है जैसे- बस स्टॉप, पान की दूकान, गली, सड़क इनको बिना बोले समझाएँ ।

बच्चे की समझ और भाषा

- समझ के आधार के रूप में भाषा।
- भाषा और सामाजिक समता।
- बच्चे की अस्मिता का सवाल ।[14]

भारतीय भाषाओं पर छाए घटाटोप और अंधकार काल में भाषाओं की एकात्मता पर विचार आवश्यक है। इसी एकात्मता से बहुभाषिकता का मूल लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। भाषाओं के बीच आंतरिक सूत्र की पड़ताल आवश्यक है। भारतीय सभ्यता के पास अपनी भाषाओं की ताकत है जो उसे विशिष्ट बनाती है। भाषिक संरचना पर विचार करके भाषा के प्रति उदार दृष्टि रखकर भाषाओं की ताकत को समझने में आसानी होगी। जिस प्रकार भाषा का भूगोल होता है उस भूगोल की पड़ताल जरूरी है। भाषाई संस्कृति के विकास को समझना जरूरी है।

राष्ट्रीय मूल्यांकन सर्वे की परीक्षा में पठन और अपठित गद्यांश पर आधारित प्रश्नों को करने में कमजोर पाए गए हैं। इसीलिए कम से कम पढ़ना, लिखना, बोलना, सुनना और सृजन में छात्र-छात्राओं को किसी तरह की कोई कठिनाई न हो। लगातार अध्यापकों को इन सभी बिंदुओं पर गंभीरता से सोचने की जरुरत है।

गतिविधि-2

शिक्षक द्वारा पाठ्यपुस्तक की कोई कहानी का सारांश छात्रों को सुनाई जाए उसके बाद विद्यार्थियों से कहानी का संदेश समझकर बताने को कहा जाए।

समझ बढ़ाने के लिए अपने छात्रों की पठन रणनीतियों का अवलोकन करना।

- अनुमान के आधार पर
- समृद्धि के आधार पर
- पूर्वानुमान लगाने के लिए चित्रों का उपयोग कर
- शब्द के पहले पूर्वानुमान लगाकर
- हर शब्द को अलग-अलग पढ़कर
- पाठ के हिस्से को पढ़कर
- प्रत्येक शब्द की ओर संकेत
- वाक्यों के नीचे उँगली घुमाकर

अन्य के साथ आप छोटे समूहों में काम करने में सक्षम हो सकते हैं। अलग-अलग रणनीतियों का उपयोग करने वाले पाठकों की जोड़ियाँ बनाने पर विचार करें, ताकि आप देख सकें कि क्या वे एक दूसरे से सीख सकते हैं। पूरे स्कूली वर्ष के दौरान आपके छोटे छात्रों की पठन प्रगति के रिकॉर्ड विकसित करने के लिए सारणी की प्रतियों का उपयोग करें। साथ ही बहुभाषी समझ बनाने हेतु अलग-अलग बच्चों की मातृभाषा को कक्षा में बोलकर एक दूसरे से सीखने हेतु प्रेरित करना चाहिए।

भारतीय भाषाओं पर छाए घटाटोप और अंधकार काल में भाषाओं की एकात्मता पर विचार आवश्यक है। इसी एकात्मता से बहुभाषिकता का मूल लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। भाषाओं के बीच आंतरिक

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 57

सूत्र की पड़ताल आवश्यक है। भारतीय सभ्यता के पास अपनी भाषाओं की ताकत है जो उसे विशिष्ट बनाती है। भाषिक संरचना पर विचार करके भाषा के प्रति उदार दृष्टि रखकर भाषाओं की ताकत को समझने में आसानी होगी। जिस प्रकार भाषा का भूगोल होता है उस भूगोल की पड़ताल जरूरी है। भाषाई संस्कृति के विकास को समझना जरूरी है। आज भाषा की जड़ता तोड़कर एकात्मता का सूत्र ग्रहण कर आगे बढ़ने की जरूरत है अन्यथा सारी भाषाओं के साथ हिंदी का भी नुकसान ही होगा। हिंदी का प्रचार-प्रसार छोटी-छोटी भाषाओं को समाप्त कर नहीं संभव है। हिंदी को देश की संपर्क की सबसे बड़ी भाषा होने का गौरव कोई नहीं छीन सकता, छीन पाना असंभव है। इसलिए हिंदी को सहजता के साथ आगे बढ़ने दीजिए। सभी भाषाओं के बीच हिंदी संवाद का व्यापक बन सकती है भाषा को आगे बढ़ाने की जरूरत है। 21वीं सदी में सबसे बड़ा खतरा भाषाओं पर है।

लेखक डीइएसएसएच, एनसीईआरटी क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल में सहायक प्राध्यापक हैं।

संदर्भ

1 रामविलास शर्मा 'भाषा और समाज' पृ-406,ग्यारहवाँ संस्करण, 2011 राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
2 Multilingual education research: http://blog.britishcouncil.org.in/ towards-a-multilingual-education-research-partnership-for-india.
3 https://www.eklavya.in/magazine-activity/sandarbh-magazines/200-sandarbh-from-issue-81-to-90/sandarbh-issue-85/584-multilingualism-a-classroom-resource-by-rama-kant-agnihotri.
4 एन सी एफ 2005 के पृष्ठ संख्या 41,एनसीईआरटी, नई दिल्ली।
5 भारतीय भाषाओं का आधार-पत्र फोकस समूह, एन सी एफ-2005 एनसीईआरटी, नई दिल्ली।
6 भारतीय भाषाओं का आधार-पत्र फोकस समूह के दस्तावेज के सार-संक्षेप।
7 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 के ड्राफ्ट पृ 110।
8 https://www.eklavya.in/magazine-activity/sandarbh-magazines/200-sandarbh-from-issue-81-to-90/sandarbh-issue-85/584-multilingualism-a-classroom-resource-by-rama-kant-agnihotri.
9 एन सी एफ 2005 के पृष्ठ संख्या 41,एनसीईआरटी, नई दिल्ली।
10 भारतीय भाषाओं का आधार-पत्र, फोकस समूह, एन सी एफ-2005 एनसीईआरटी, नई दिल्ली।
11 https://educationmirror.org/ 2016/ 04/18/ benefits-of-multilingualism-in-education.
12समझ का माध्यम, पृ-10, अक्तूबर 2010 एनसीईआरटी, नई दिल्ली।
13 मातृभाषा हिन्दी शिक्षण पृष्ठ संख्या 4 एनसीईआरटी के 1998 के संस्करण।
14 समझ का माध्यम, अक्तूबर 2010, एनसीईआरटी, नई दिल्ली।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 58

भारतीय संस्कृति की पावन परंपरा में नारी को सदैव सम्मानीय स्थान प्राप्त हुआ है। किसी देश की उन्नति एवं अवनति वहाँ के नारी समाज पर अवलंबित होती है। जिस देश की नारी जाग्रत एवं शिक्षित हो, वही देश संसार में सबसे उन्नत माना जाता है। मनुस्मृति में कहा है –''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवता।'' नारी गुणों की खान है। वही पति के लिए चरित्र, संतान के लिए ममता, समाज के लिए सेवा और विश्व के लिए करुणा संजोने वाली महाकृति है। हमारे वैदिक ग्रंथों, ऋचाओं और साहित्य में नारी को एक शक्तिपुंज सृष्टि-सृजेता के रूप में चित्रित किया गया है। वह जननी है, कल्याणस्वरूपा है, लालन-पालन करती है, अन्नपूर्णा है तथा आसुरी-प्रवृत्तियों का परिहार करने हेतु समग्र शक्ति संपन्न अतुलित शक्तिदात्री है।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 59

अर्चना लखोटिया

देवी स्वरूपा नारी

धरती की तरह मौन है नारी,
चाँद की तरह शीतल है नारी,
सागर की तरह विशाल है नारी,
इसे अधिकार दो नहीं तो ,
रणचंडी –सम खूँख्वार है नारी।''

भारतीय संस्कृति की पावन परंपरा में नारी को सदैव सम्मानीय स्थान प्राप्त हुआ है। किसी देश की उन्नति एवं अवनति वहाँ के नारी समाज पर अवलंबित होती है। जिस देश की नारी जाग्रत एवं शिक्षित हो, वही देश संसार में सबसे उन्नत माना जाता है। मनुस्मृति में कहा है —''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवता।''

नारी गुणों की खान है। वही पति के लिए चरित्र, संतान के लिए ममता, समाज के लिए सेवा और विश्व के लिए करुणा संजोने वाली महाकृति है। एक गुणवान स्त्री काँटेदार झाड़ी को भी सुवासित कर देती है और निर्धन से निर्धन परिवार को भी स्वर्ग बना देती है। एक आदर्श नारी धैर्य, त्याग, ममता, क्षमा, स्नेह, समर्पण, सहनशीलता, दया, परिश्रमशीलता आदि गुणों से परिपूर्ण होती है। पुरुष विजय का भूखा होता है और नारी समर्पण की। वास्तव में भारतीय नारी पृथ्वी की कल्पलता के समान है।

वैदिक काल में नारी की स्थिति

''सीता का त्याग और द्रोपदी के चीर की कहानी,
पत्थर दिल आँखों में भी ला

देती है पानी।

कृष्ण को देवकी ने जन्मा, औ' यशोदा ने पाला,
नारी तुम हो संस्कारों की प्रथम पाठशाला॥''

हमारे वैदिक ग्रंथों, ऋचाओं और साहित्य में नारी को एक शक्तिपुंज सृष्टि-सृजेता के रूप में चित्रित किया गया है। वह जननी है, कल्याणस्वरूपा है, लालन-पालन करती है, अन्नपूर्णा है तथा आसुरी-प्रवृत्तियों का परिहार करने हेतु समग्र शक्ति संपन्न अतुलित शक्तिदात्री है। अतीत के आँचल में भारतीय नारी घर परिवार में गृहस्वामिनी के रूप में गृहिणी, पुरुष की अभिन्न सहचरी के रूप में अर्द्धांगिनी, गृह की समृद्धि के रूप में गृहलक्ष्मी आदि अलंकारों से सुशोभित रही है। कोई भी अनुष्ठान, अभियान एवं कर्म उसके बिना पूरा नहीं माना जाता था। नारी अपनी गरिमामयी स्थिति का प्रतीक रही है। ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं— इस संदर्भ में गार्गी, मदालसा, अनुसूया, अरुंधती, मैत्रेयी आदि विदूषी नारियाँ उल्लेखनीय हैं। वैदिक काल में भारतीय नारी का स्वरूप बहुत ही सम्माननीय था। उसे पुरुष से भी अधिक महत्त्व दिया जाता था इसीलिए नारी का नाम पुरुष से पहले लिया जाता था जैसे —लक्ष्मीनारायण, सीताराम, राधेश्याम, उमाशंकर, गौरीशंकर आदि। संतान को अपनी माता के नाम से जाना जाता था जैसे—कौंतेय, राधेय, कौशल्यानंदन, अंजनीपुत्र, आंजनेय, यशोदानंदन आदि।

वैदिक काल में भारतीय नारी का स्वरूप बहुत ही सम्माननीय था। उसे पुरुष से भी अधिक महत्त्व दिया जाता था इसीलिए नारी का नाम पुरुष से पहले लिया जाता था जैसे –लक्ष्मीनारायण, सीताराम, राधेश्याम, उमाशंकर, गौरीशंकर आदि। संतान को अपनी माता के नाम से जाना जाता था जैसे–कौंतेय, राधेय, कौशल्यानंदन, अंजनीपुत्र, आंजनेय, यशोदानंदन आदि।

मध्यकाल में नारी की स्थिति — जैसे -जैसे कालचक्र के प्रत्यावर्तन की गतिमयता अपना रूप बदलती गई वैसे- वैसे नारी की स्वरूप-महिमा, समाज में सहभागिता की स्थिति संकुचित होती चली गई। वह संपत्ति के रूप में समझी जाने लगी, घर की दीवारों में बंद हो गयी और यहीं से शोषण की त्रासदी प्रारंभ हो गई। पुरुष वर्ग का निरंकुश शासन नारी को निरंतर पदाक्रांत करने की प्रक्रिया में सक्रिय बना रहा। संभवत: यह मुगलकालीन समय रहा है। मर्यादाहित जौहर-अग्नि समर्पण तक नारी की नियति रही है। मध्यकाल में नारी शिक्षा पर रोक लगा दी गई। केवल कुलीनवंशीय नारी ही शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। यद्यपि नारी को त्याग, समर्पण और करुणा का प्रतिमान माना गया है फिर भी वह यथोचित सम्मान की स्थिति से सदैव वंचित रही। उसकी जीवन क्रिया तो— इसी उहापोह में रीति चली गई। मध्यकाल में यह भी कहा जाने लगा कि नारी का स्वतंत्र रहना उचित नहीं इसलिए बचपन में पिता, युवावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में जीवनयापन प्रक्रिया स्वीकार की गई।

पुनर्जागरण काल— उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल को पुनर्जागरण काल कहा जाता है। इस काल में नारी कल्याण हेतु आंदोलन हुई। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की गौरवमयी भागीदारी रही। कस्तूरबा गांधी, दुर्गा भाभी, सुचेता कृपलानी, सरोजनी नायडू आदि नाम उल्लेखनीय रहे हैं। अब नारी इतनी प्रतिबंधित नहीं रही। अब यह मैथिलीशरण गुप्त की ''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध और आँखों में है पानी'' नहीं रही। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 61

'सरस्वती', स्वामी विवेकानंद जैसे देश के अनेक विद्वज्जन मनीषियों ने नारी शिक्षा, नारी के सर्वांगीण विकास की बात को प्रमुखता प्रदान करते हुए समाज में भारतीय नारी के गरिमामयी स्थान को प्रतिस्थापित किया है। भारत में उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण से प्रारंभ नारी जागृति का दौर स्वतंत्रता प्राप्ति व उसके बाद अब तक एक लंबी यात्रा तय कर चुका है। वस्तुत: बीसवीं सदी के प्रथमार्द्ध को नारी जागृति एवं उत्तरार्द्ध को नारी प्रगति का काल कहा जाता है।

आधुनिक काल में नारी — नारी जगी, पढ़ी, आगे बढ़ी और इतनी बढ़ी कि आज प्रशासनिक, सामाजिक, राजनीतिक, औद्योगिक क्षेत्र, पुलिस और फौज में भी पुरुष वर्ग के साथ बराबर चल रही है। डॉक्टर, पायलट, इंजीनियर बनकर अपनी प्रतिभा से चमत्कृत कर रही है। आज परिवार का आर्थिक संबल केवल पुरुष ही नहीं है, अपितु नारी का भी इसमें पूर्ण योगदान है। एक सर्वे के अनुसार भारत में लगभग 9 लाख लघु उद्योग उद्यमशील महिलाओं द्वारा संचालित हैं। यह भागीदारी निरंतर गतिशील हो रही है। बैकिंग, केंद्र सरकार, राज्य सरकार, कॉर्पोरेट जगत, स्वयंसेवी संस्थाओं, तकनीकि क्षेत्र आदि में दक्षता के साथ महिलाएँ आगे बढ़ रही हैं क्योंकि इनकी नेटवर्किंग क्षमता सहयोगियों के साथ मधुर व्यवहार, स्थायित्व की मानसिकता, सीखने की जिज्ञासा, परिवर्तन की बलवती इच्छा, स्वस्थ अभिव्यक्ति, सकारात्मक सोच, विनम्रता तथा आगे बढ़ने की उत्कट अभिलाषा आदि क्षमताओं का बाहुल्य है। इन्हीं गुणों के कारण प्रत्येक कार्य क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका उपादेय सिद्ध हुई है।

किंतु इतना करके भी क्या पाती है वह? समाज में क्या स्थान है भारतीय नारी का? क्या वह पारिवारिक विषमताओं और जीवन में असमानता की स्थितियों के मध्य दोहरा जीवन नहीं जी रही? आज भी वह शोषण की त्रासदी से मुक्त नहीं है। उसे घर और बाहर दोनों कार्यक्षेत्रों का निर्वाह करना पड़ रहा है। वह निरंतर बोझ से लदी रहती है। उसका जीवन भागदौड़, आपाधापी की कहानी बन रह जाता है। पति, बच्चे, घर, परिवार, थकान और उदासी यही उसके जीवन के पर्याय बन जाते हैं।

नारी जगी, पढ़ी, आगे बढ़ी और इतनी बढ़ी कि आज प्रशासनिक, सामाजिक, राजनीतिक, औद्योगिक क्षेत्र, पुलिस और फौज में भी पुरुष वर्ग के साथ बराबर चल रही है। डॉक्टर, पायलट, इंजीनियर बनकर अपनी प्रतिभा से चमत्कृत कर रही है। आज परिवार का आर्थिक संबल केवल पुरुष ही नहीं है, अपितु नारी का भी इसमें पूर्ण योगदान है।

सुधार हेतु अपेक्षाएँ —

● भारतीय संस्कृति में पुरुष और नारी जीवन गाड़ी के सामानांतर पहिये हैं। इस सबके बावजूद भारतीय नारी की समस्याओं और कठिनाइयों का अंत नहीं है। आज आवश्यकता है नारी चेतना के स्वर को प्रखर करने की। इस हेतु निम्नांकित सुधारात्मक अपेक्षाएँ हैं —

● विवाह चाहे परंपरागत हो या प्रेम विवाह। पति-पत्नी अपने-अपने दायित्वों का विवेकपूर्वक निर्वाह करें तो तनाव को कम किया जा सकता है।

● रूढिजन्य स्थितियों को नकारते हुए संस्कृति के जीवन तत्त्व को ग्रहण करे।

● संकीर्ण मानसिकता के दायरे से बाहर निकलने का प्रयार करे।

● संस्कारवान पीढ़ी तैयार हो ताकि बलात्कार जैसे

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 62

जघन्य अपराध ना हों।

● बाल विवाह, दहेज प्रथा, बेमेल विवाह, लड़कियों को बेचना, भ्रूण परीक्षण तथा कन्या भ्रूण हत्या पूर्ण रूप से प्रतिबंधित हो।

● स्वतंत्रता की ओट में नारी की भूमिकाएँ विद्रूपता लिए हुई है। धारावाहिकों, विज्ञापनों, फिल्मों में नारी देह का अश्लील प्रदर्शन हो रहा है इसलिए दुष्कर्म की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।

● संयुक्त परिवार की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है।

विभिन्न सरकारी योजनाएँ यथा- बालिका छात्रावास, साइकिल योजना, स्कूटी योजना, कंप्यूटर प्रशिक्षण, बालिका शिक्षा ऋण, आपकी बेटी योजना आदि की क्रियान्वित सही तरीके से हो ताकि योग्य व आवश्यकता वाली महिलाओं को लाभ मिल सके।

बालक की प्रथम पाठशाला परिवार है। उसकी प्रथम गुरु माँ है। 'माँ' शब्द अपने आप में संस्कार का संपूर्ण शास्त्र है।

''संस्कारों की जननी, तू ही सबकी आशा है।''

समाज परिवार से बनता है। परिवार को स्वर्ग उस घर की नारी ही बना सकती है। यदि नारी शिक्षित होगी, समझदार होगी तो अपने बच्चों में अच्छे संस्कारों के बीज पैदा करेगी। हर नारी को चाहिए कि वह अपनी संतान को घर का गमला नहीं उपवन का वृक्ष बनाएँ, ताकि यदि कोई उन्हें खाद-पानी न भी दें, तब भी वे अपने बलबूते पर खड़े रह सके। आधुनिक भारत का जो दुनिया में स्थान है उसे बनाने में नारी का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। संस्कारयुक्त पीढ़ी तैयार करने के कारण ही भारत विश्वगुरु के आसन पर विराजमान हो सका।

इस सबके बावजूद भारतीय नारी की समस्याओं और कठिनाइयों का अंत नहीं हुआ है। नारी को अभी भी हेय समझा जाता है और उसका शरीरिक और मानसिक शोषण किया जाता है। दफ्तरों में अनेक प्रकार की अप्रिय बातें सुनने को मिलती हैं और घर में भी अपमान के घूँट पीने पड़ते हैं। इन सब बाधाओं को दूर करने का प्रयास नारी कर रही है। वह समस्याओं से जूझ रही है और नवीन चुनौतियों का मुकाबला भी कर रही है। वह दिन दूर नहीं जब समाज में उसका गौरवपूर्ण तथा सम्मानजनक स्थान सुनिश्चित होगा।

समाज परिवार से बनता है। परिवार को स्वर्ग उस घर की नारी ही बना सकती है। यदि नारी शिक्षित होगी, समझदार होगी तो अपने बच्चों में अच्छे संस्कारों के बीज पैदा करेगी। हर नारी को चाहिए कि वह अपनी संतान को घर का गमला नहीं उपवन का वृक्ष बनाएँ, ताकि यदि कोई उन्हें खाद-पानी न भी दें, तब भी वे अपने बलबूते पर खड़े रह सके। आधुनिक भारत का जो दुनिया में स्थान है उसे बनाने में नारी का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। संस्कारयुक्त पीढ़ी तैयार करने के कारण ही भारत विश्वगुरु के आसन पर विराजमान हो सका।

लेखिका अजमेर के राजकीय विद्यालय में प्राध्यापिका हैं।

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 63

सहयोग की शक्ति

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सहवीर्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

—कठोपनिषद्, शांतिपाठ व तैत्तिरीयोपनिषद् 2/1/शांति पाठ

परमात्मा हमारी साथ-साथ रक्षा करें। हमारा साथ-साथ पालन करें। हमें साथ-साथ विद्या संबंधी सामर्थ्य प्रदान करें। हम तेजस्वी हों। हम द्वेष न करें। त्रिविध ताप की शांति हो।

भारतीय मनीषा ने मानव सभ्यता के प्रारंभिक काल में ही व्यक्ति के उन्नयन में समाज के सहयोग के महत्त्व को समझ लिया था। इसीलिए उन्होंने जीवन के प्रत्येक चरण पर समाज में आपसी सहयोग बनाये रखने पर बल दिया है और ईश्वर से प्रार्थना की है कि वह समाज में आपसी सहयोग बनाये रखने में हमारी सहायता करें, जिससे समाज दैहिक, दैविक और भौतिक- तीनों प्रकार के ताप से बच सके और विश्व में सर्वत्र शांति हो।

ऋग्वेद में भी इसी प्रकार समाज में सभी कार्य मिलजुल कर आपसी सहयोग से करने का आदेश दिया गया है—

सं गच्छध्वं सं वद्धवम

—ऋ10/191/2

मिलकर चलो और मिलकर बोलो

वैदिक ऋषियों ने मिलजुल कर काम करने की आवश्यकता क्यों बताई, इस तथ्य को स्पष्ट करती है अथर्ववेद की यह ऋचा—

मिथो विघ्राना उप यन्तु मृत्युम

—अथर्व 6/32/3

''परस्पर लड़ने वाले मृत्यु का ग्रास बनते हैं और नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।''

भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब समस्त भारतीय एक जुट होकर कार्य करते हैं और विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करते हैं तो वे सिकंदर जैसे विश्व विजेता को भी भारत का सीमा से ही लौटने को मजबूर कर, अखंड और शक्तिशाली भारत का निर्माण करते हैं और जब भारत के योद्धा आपसी विद्वेष में आपस में ही लड़ते-मरते हैं तो मुट्ठीभर विदेशी आक्रमणकारी भारत पर शासन करने लगते हैं। इसलिए हमें राष्ट्र हित में, आपसी मतभेद भुलाकर एकजुट होकर कार्य करना चाहिए।

-डॉ. रवीद्र अग्रवाल

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 64

कर्म करने से ही सिद्धि प्राप्त होती है

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छता समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

—ईशावास्योपनिषद्-2

इस लोक में कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करें। इस प्रकार मनुष्यत्व का अभिमान रखने वाले तेरे लिए इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है, जिससे तुझे (अशुभ) कर्म का लेप न हो।

भारतीय ऋषियों ने कहा है कि मानव यदि सौ वर्ष जीने की इच्छा करे तो कर्म करते हुए ही जीना चाहिए। कर्म करते हुए जीवन जीने में ही पुरुषार्थ है। अब प्रश्न है कि मानव कर्म क्यों करे। इस संबंध में अथर्ववेद का आदेश है—

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो में सव्य आहितः।

—अथर्व 7/50/8

''मेरे दाएँ हाथ में कर्म है और बाएँ हाथ में विजय।''

अथर्ववेद की इस आज्ञा का स्पष्ट अर्थ है कि कर्म करने से ही विजय की सिद्धि होती है। अकर्मण्य व्यक्ति को कभी कोई सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेशु कदाचिन्।

श्रीमद्भगवद्गीता 2.47

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण भी कर्म करने का ही उपदेश देते हैं। अब प्रश्न है कि व्यक्ति किस प्रकार के कर्म करे, जिससे उसे विजय प्राप्त हो और सद्गति मिले। तैत्तिरीयोपनिषद् के ऋषि ने इस प्रश्न का बहुत स्पष्ट और सटीक उत्तर दिया —

देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव ।
पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव ।
यान्यनवद्यानि कर्माणि । तानि सेवितव्यानि । नो इतराणि ।
यान्यस्माक सुचरितानि । तानि त्वयोपास्यानि ॥ 2 ॥

—तैत्तिरीयोपनिषद् 1/11/2

देवकार्य और पितृकार्यों से प्रमाद नहीं करना चाहिए। तू मातृदेव (माता ही जिसका देव है ऐसा) हो, पितृदेव हो, आचार्यदेव हो, अतिथिदेव हो। जो अनिन्द्य कर्म हैं उन्हीं का सेवन करना चाहिए-दूसरों का नहीं। हमारे (हम गुरुजनों के) जो शुभ आचरण हैं तुझे उन्हीं की उपासना करनी चाहिए। दूसरे प्रकार के कर्मों की नहीं।

तैत्तिरियोपनिषद् में शिक्षावल्ली में ऋषि ने श्लोक संख्या 1/11/1 से 1/11/4 तक स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया है कि व्यक्ति को कौन-कौन से कर्म करने चाहिए, इन निर्देशों में स्पष्ट कहा गया कि शुभ आचरण करना चाहिए और केवल अनिन्द्य कर्म ही करने चाहिएँ।

–डॉ. रवींद्र अग्रवाल

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 65

मनोगत

माननीय,

आशा है आप सपरिवार स्वस्थ व सकुशल होंगे। कोविड-19 महामारी के कारण पूरा विश्व जनवरी 2020 से ही त्रस्त है। भारत भी इससे अछूता नहीं रहा। यद्यपि इस महामारी की रोकथाम के लिए भारत सरकार ने विश्व के अन्य देशों की तरह ही 23 मार्च, 2020 को देश व्यापी लॉकडाउन की घोषणा की थी। जिसमें सामाजिक-आर्थिक कारणों के कारण जून , 2020 माह से धीरे-धीरे छूट प्रदान की जा रही है। जैसे-जैसे यह छूट बढ़ रही है उसी प्रकार देश में कोरोना संक्रमितों की संख्या भी बढ़ रही है। जो एक गंभीर चिंता का विषय है। ऐसी स्थिति में आवश्यक सावधानी बरतना हम सबका सामाजिक दायित्व है।

'मंगल विमर्श' परिवार ने अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह करते हुए ही पत्रिका का दूसरी तिमाही का अंक जून-2020 में प्रकाशित किया था। कूरियर व्यवस्था सुचारु न होने के कारण वह अंक आपके पास ई-मेल द्वारा भेजा गया था। आशा है आपको अंक प्राप्त हो गया होगा। यदि अंक ई-मेल से प्राप्त नहीं हुआ हो तो सूचित करने की कृपा करें जिससे अंक ई-मेल से या व्हाट्सएप से पुन: भेजा जा सके।

कोरोना महामारी के बढ़ते प्रकोप के कारण ही पत्रिका का तीसरी तिमाही का अंक सितंबर, 2020 में प्रकाशित हो सका है। पत्रिका के प्रकाशन में हो रहे विलंब के कारण हमें बहुत खेद है, परंतु कोरोना महामारी के प्रकोप के कारण यह हमारी विवशता भी है।

पत्रिका के प्रकाशन में हुए विलंब के कारण आपको जो असुविधा हुई है उसके लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

'मंगल विमर्श' परिवार का प्रयास रहेगा कि जैसे ही परिस्थितियाँ सामान्य हों वैसे ही पत्रिका समय पर प्रकाशित की जा सके। आशा है कि पूर्व की भांति आपका सहयोग भविष्य में भी प्राप्त होता रहेगा।

ईश्वर से प्रार्थना है कि इस आपदा के काल में आप अपने परिवार व इष्ट मित्रों सहित स्वस्थ, कुशल व सानंद रहें। इसी शुभकामना के साथ।

स्नेहाकांक्षी
आदर्श गुप्ता
प्रबंध संपादक

MV_Sept_2020 final_Layout 1 01-10-2020 12:13 Page 66

मंगल विमर्श
सदस्यता -प्रपत्र

मंगल विमर्श त्रैमासिक पत्रिका

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

सदस्यता -शुल्क

10 वर्षों के लिए
₹2000 मात्र

मंगल विमर्श की..... वर्षों की सदस्यता हेतु.....

रुपये का ड्राफ्ट/ चैक क्रं. ..... दिनांक.....

बैंक..... भेज रहे हैं,

कृपया..... वार्षिक सदस्य बनाने का कष्ट करें।

नाम.....

पता.....

.....

..... पिनकोड .....

फोन :..... मोबाइल:.....

इ-मेल.....

पत्रिका सदस्यता शुल्क हेतु
मंगल सृष्टि (Mangal Srushti)
के नाम चैक/ ड्राफ्ट सी-84, अहिंसा विहार,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 पर भेजें।
फोन नं. +91-9811166215,
+91-11-42633153

ई-मेल mangalvimarsh@gmail.com **वेब साइट** www.mangalvimarsh.in